द्वितीय अध्याय :

"आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन"

संस्कृति - अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र

संस्कृति के मुख्य घटक

संस्कृति एवं समाज

प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक कहानियों का सांस्कृतिक

अध्ययन

कल्पित कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

संस्कृति

भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व की सबसे समृद्ध और पुरानी संस्कृति है। संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से है। हम समाज में जो कुछ भी अच्छा बुरा सीखते हैं, वह संस्कृति के अन्तर्गत ही आता है। हमारे जीवन जीने के तौर-तरीके, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज इत्यादि सभी संस्कृति के ही अंग हैं। डॉ. गुलाब राय अपने निबन्ध 'भारतीय संस्कृति' में संस्कृति क्या है? इस पर अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'संस्कृति' शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है। इसका भी अर्थ' पैदा करना, सुधारना' है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।"[1]

भारतीय संस्कृति, विश्व की अन्य सभी संस्कृतियों की जननी रही है। किसी भी क्षेत्र में चाहे राजनीतिक क्षेत्र हो या जीने की कला अथवा विज्ञान का क्षेत्र, हमेशा भारतीय संस्कृति का स्थान सर्वोच्च रहा है। यदि भारत को भौगोलिक दृष्टि से देखा जाये तो यह विभिन्नताओं का देश कहा जायेगा, लेकिन इसके बावजूद प्राचीन काल से ही इसका अस्तित्व एक ही इकाई की भाँति बना हुआ है।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी जीवन पर्यन्त 'मैं' पर विजय प्राप्त करने के लिये सभी को प्रेरित करते रहे। गांधी जी ने भी अपनी विचार धारा के अनुकूल उस आर्थिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया जिसे मार्क्स ने भी स्वीकार किया था। इनका विचार था कि भारत में कुछ लोगों के लिये, लाखों और करोड़ों की सम्पत्ति पड़ी हुई है और शेष लोगों को पेट भरने के लिये दो वक्त की रोटी भी नहीं। इस आर्थिक असमानता के फलस्वरूप यदि हम रामराज्य की कल्पना करना भी चाहे तो यह असम्भव सा प्रतीत होता है, परन्तु इसके साथ ही साथ वे यह भी कहते हैं कि "गरीब हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो सकता है ; लेकिन चरित्र खोकर धनी बने हुए हिंदुस्तान का स्वतंत्र होना मुश्किल है। चरित्र, संस्कार, 'मैं' को जीतना यही संस्कृति है।"[2]

कुसुम बाजपेयी 'भारतीय संस्कृति' में कहती हैं कि "किसी भी देश की संस्कृति उस देश की धरोहर होती है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव के व्यवहार को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति के अभाव में मानव पशु के समान होता है।"[3]

संस्कार का हमारी संस्कृति से विशेष सम्बन्ध है। यदि मनुष्य में संस्कार नहीं है तो वह मनुष्य नही बल्कि पशु के समान समझा जाता है, क्योंकि मनुष्य को मनुष्य बनाने में संस्कृति का विशेष योगदान होता है। संस्कृति के द्वारा ही मनुष्य संस्कारवान होता है। जिससे वह अपने घर,

परिवार, समाज तथा देश में एक अलग पहचान बना पाता है तथा बड़े-बुजुर्गों, माता-पिता इत्यादि का सम्मान करते हुए अपने बच्चों को संस्कारित करने का बराबर प्रयास करता है। हम समाज में जैसा देखते हैं वैसा ही अधिकतर सीखने का प्रयास करते हैं। जैसे कि यदि एक शिशु को जन्मोपरान्त सुनसान जंगल में छोड़ दिया जाये तो वह उसी वातावरण में बड़ा होकर जंगली पशुओं अथवा वहाँ पर रहने वाले जीवों की तरह ही चलने-फिरने लगेगा। उसके रहन-सहन, खान-पान और जीवन जीने के तौर-तरीके मनुष्य से भिन्न ही रहेंगे, क्योंकि वह जिस समाज में पला-बढ़ा है वहाँ की संस्कृति ही ऐसी है, जिसमें वो ढलता चला गया। संस्कृति का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संचरण भी होता रहता है। इस प्रकार से यदि देखा जाये तो संस्कृति में सब कुछ सम्मिलित है। जैसा कि साहित्यकार गुलाबराय ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में कहा है कि -"जलवायु के अनुकूल रहन-सहन की विधियाँ और विचार परम्पराएँ जाति के लोगों में दृढ़ मूल्य हो जाने से जाति के संस्कार बन जाते हैं। इनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी प्रकृति के अनुकूल न्यूनाधिक मात्रा में पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करता है। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं।"[4]

भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति मनुष्य को दयालु तथा विनम्र बनाती है। भक्ति काल के कवि 'तुलसीदास' जी जब कहते हैं कि-

"स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा"[5] तब वे इसी विनम्रता को बताते हैं नहीं तो वे फिर यह न कहते कि वहीं साहित्य धन्य होता है जो निर्मल गंगा के समान सबके लिये हितकर होता है।

संस्कृति क्या है इस सम्बन्ध में महान वैज्ञानिक 'अल्बर्ट आइन्स्टाइन' का मंतव्य विशेष उल्लेखनीय है। वह संस्कृति को विशेष महत्व देते हुए कहते हैं कि "वह व्यक्ति की संस्कृति ही है, जो उसकी आत्मा को मांजकर दूसरों के उपकार के एवज में उसे नम्र और विनीत बनाती है। जितना व्यक्ति मन, कर्म, वचन से दूसरों के प्रति उपकार की भावनाओं और विचारों को प्रधानता देगा, उसी अनुपात से समाज में उसका सांस्कृतिक महत्व बढ़ेगा।"[6]

संस्कृति के महत्व को बताने वाले प्रसिद्ध महान वैज्ञानिक 'डॉ. अल्बर्ट आइन्स्टाइन' का नाम उस घातक परमाणु-बम से जुड़ा हुआ है, जो मानव सभ्यता और संस्कृति का सर्वनाश करने वाला है। इन्होंने अपने एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेख जिसका नाम 'संस्कृति का मूल आधार' था। उस लेख के शुरुआत में न लिखकर अंत में लिखा है कि -"मानव-जाति जिस दिन संस्कृति के महत्व को समझेगी, उसी दिन वह अपनी आत्मा के साथ

साक्षात्कार करने के योग्य हो सकेगी। संस्कृति न तो भौगोलिक सीमा-बन्धनों को महत्व देती है और न राजनीति को ही। संस्कृति तो अखिल मानवता की सम्मिलित पूंजी है।"[7]

भारतीय संस्कृति में अपने से बड़ों के लिये उचित सम्मान और श्रद्धा का विशेष महत्व है। हर व्यक्ति को अपने घर-परिवार तथा समाज में जीवन-जीने के तरीकों तथा नैतिक मूल्यों का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि एक आदर्श जीवन जीने के लिये हमें सुसंस्कृत होना अति आवश्यक है। यदि हमारे सामने बड़े खड़े हैं तो उनके सामने हमें नहीं बैठना चाहिये, बड़ों को खाना पहले परोसना तथा बड़ों के आने पर अपना स्थान छोड़ देना जैसी क्रियाएँ हमारे दैनिक जीवन में अक्सर देखने को मिलती है। यही हमारी संस्कृति के प्रमुख अभिन्न अंग हैं, जो एक सामाजिक व्यक्ति में व्याप्त होती है। हमेशा हम सब अपने देश, गाँव और परिवार में देखते हैं कि हम किसी बुजुर्ग या बड़ों को उनका नाम लेकर नहीं बुलाते हैं। माता-पिता, गुरु, बड़े भाई- बहन, पूज्य स्त्री-पुरुषों को सम्मान देने के लिये हम उनका चरण स्पर्श करते हैं। पवित्र तीर्थ-स्थलों पर विभिन्न धर्मों के लोग आते हैं और अपनी संस्कृति का एक दूसरे से आदान-प्रदान करते हैं, जिससे 'अनेकता में एकता' की भावना को बल मिलता है। इस सम्बन्ध में जय प्रकाश मिश्र कहते हैं कि "तीर्थ स्थल भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं, जहाँ धार्मिक अवसरों पर देश के

विभिन्न स्थानों के लोग एकत्र होते थे। ऐसा करने से रीति-रिवाजों का आदान-प्रदान व समन्वय तो होता ही था, भारतीय संस्कृति को बल भी मिलता था जिससे राष्ट्रीय एकता को और मजबूत बनाने के अवसर मिलते थे।"[8]

भारतीय संस्कृति में किसी व्यक्ति को यदि कोई वस्तु देना होता है तो उसे दाहिने हाथ से दिया जाता हैं, क्योंकि बायें हाथ से किसी को कोई वस्तु देना अपमानजनक माना जाता है। कभी भी हमें ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये, जिससे किसी की आत्मा को चोट पहुँचे अर्थात् कठोर और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। एक सुसंस्कृत मनुष्य को देवी-देवताओं को चढ़ाया जाने वाला पुष्प कभी सूंघना नहीं चाहिये।

हमारी भारतीय संस्कृति का रूप अद्‌वितीय एवं स्थिर है। जिसकी रक्षा का उपादान हम सब पर है। इस संस्कृति के समन्वयवादी तथा उदार नीति ने अन्य सभी संस्कृतियों को अपने अन्दर समाहित करने का सफल प्रयास किया है। साथ ही साथ अपने मूल अस्तित्व को भी संरक्षित किया है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का प्राण, वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के दिल और आत्मा में विराजमान होती है। भारतीय संस्कृति में हमारे सभी पवित्र एवं पूजनीय माता- पिता, भाई-बहन, गुरु इत्यादि का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। इन सभी में भी माता-पिता को भारतीय संस्कृति ने

सर्वोच्च, सम्मानीय स्थान दिया है और गुरु से भी अधिक श्रेष्ठ माना है। जैसा कि आप्तपुरुषों ने उल्लेख किया है

"यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः कर्तुं शक्या वर्षशतैरपि।।"[9]

<u>संस्कृति का अर्थ परिभाषा एवं क्षेत्र :</u>

<u>अर्थ :</u>

स्वभावतः मनुष्य एक सामाजिक और प्रगतिशील प्राणी होता है। संस्कृति व्यक्ति को महान तथा संस्कारवान बनाती है। बुद्धि के प्रगतिशीलता के कारण मनुष्य अपने आसपास चारों ओर के वातावरण को सदैव सुधारता और स्वच्छ बनाता रहता है। जिन व्यवहारों से वह पशुओं तथा जंगली जानवरों से ऊपर उठता है वह है- रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, जीवन पद्धति और उसके जीने के तौर-तरीके। संस्कृति और सभ्यता में घनिष्ठ सम्बन्ध होने के साथ-साथ काफी अन्तर भी होता है। सभ्यता, संस्कृति का ही एक अंग होती है।

सभ्यता से जहाँ व्यक्ति के बाह्य पक्ष अर्थात् भौतिक पक्ष के विकास की जानकारी मिलती है, वहीं पर संस्कृति व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष अर्थात् मानसिक शक्तियों, भावनाओं और विचारों को प्रकट करती है। अधिकांश शिक्षा शास्त्री तो संस्कार के परिष्कृत रूप को ही संस्कृति कहते

हैं। मानव जीवन के सामाजिक जीवन तथा उनके दिन-प्रतिदिन के आचार-विचार, कार्य-व्यवहार, तौर-तरीके तथा जीवन शैली को ही संस्कृति कहते हैं। हिन्दी साहित्य के प्रख्यात लेखक डॉ. देवराज ने अपने निबन्ध 'भारतीय संस्कृति' में संस्कृति के अर्थ को बड़े सजीवता के साथ स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है "संस्कृति शब्द का अर्थ बड़ा अनिश्चित है। नृ-विज्ञान में संस्कृति का अर्थ "समस्त सीखा हुआ व्यवहार" होता है, अर्थात् वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति शब्द परम्परा का पर्याय है।"[10]

मनुष्य के लिये भौतिक और मानसिक दोनों परिस्थितियां आवश्यक हैं, केवल भौतिक परिस्थितियों को सुधारकर मनुष्य अपने शरीर को ही संतुष्ट कर सकता है। आत्मा की तृप्ति भोजन करने से नहीं होती है यह तो केवल भूख मिटाती है। आत्मा की संतुष्टि के लिये मनुष्य जो विकास और उन्नति करते हैं उसी का नाम संस्कृति है। संस्कृति के अर्थ को अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. देवराज कहते हैं कि- "चूँकि 'संस्कृति' शब्द और उससे मिलने वाला विशेषण 'संस्कृत' प्रशंसावाचक पद है, इसलिये कहना चाहिए कि संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता या विशेषताओं का समूह है जो इस व्यक्तित्व को एक खास अर्थ में महत्वपूर्ण बनाता है।"[11]

विभिन्न विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के अर्थ को अपने-अपने अनुसार व्यक्त किया है। जिसका विवेचन निम्नलिखित है -

1. **शिवदत्त ज्ञानी के अनुसार -**"संस्कृति का शाब्दिक अर्थ "अच्छी स्थिति" सुधरी हुई स्थिति है। संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है, जिससे उसे "सुधरा हुआ", "ऊँचा", "सभ्य". आदि विशेषणों से आभूषित किया जा सके।"[12]
2. **टी. एस. इलियट के अनुसार -**"संस्कृति विशिष्ट लोगों के एक निश्चित स्थान पर साथ-साथ रहने और जीवन-यापन करने का एक निश्चित क्रम है।"[13]
3. **"हिन्दी साहित्य कोश"- 'संस्कृति** शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (E) कृ (ञ) धातु से बनता है जिसका अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। हिन्दी में आज यह अंग्रेजी शब्द "कल्चर" का पर्याय माना जाता है।"[14]
4. **हजारीप्रसाद द्विवेदी -**"संस्कृति को संकीर्ण अर्थ में न लेकर उसके व्यापक स्वरूप को ही उपन्यासों में स्थान दिया है। हिन्दी में संस्कृति, अंग्रेजी शब्द "कल्चर" का पर्याय हो गया है और उसका प्रयोग कम से कम संकीर्ण और व्यापक अर्थों में होता है।"[15]
5. **बोगार्ड्स के अनुसार -**"संस्कृति एक समूह के समस्त रीति-रिवाजों, परम्पराओं और चालू व्यवहार प्रतिमानों से बनती है। संस्कृति एक

समूह का मूलधन है। वह मूल्यों की एक ऐसी पूर्ववर्ती समष्टि है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है।"[16]

6. **अलैग्जैण्डर ए. गोल्डनवाइजर -**"संस्कृति में हमारी प्रवृत्तियाँ, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ - राजनैतिक और कानूनी, धार्मिक और आर्थिक, हमारी नैतिक संहिताएँ और शिष्टाचार के नियम, हमारी पुस्तकें और मशीनें, हमारे विज्ञान, दर्शन और दार्शनिक, ये सब और दूसरी बहुत सी चीजें तथा प्राणी, स्वयं भी और अपने विविध सम्बन्धों में भी आदि तत्व विद्यमान होते हैं।"[17]

भारतीय संस्कृति में वह हर चीजें जुड़ी हुई हैं जो हमारे जीवन से सम्बन्धित होती है। संस्कृति के अर्थ को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार परिभाषित किया है। वस्तुतः देखा जाये तो संस्कृति के अन्तर्गत - हमारे रहन-सहन, खान-पान, भाषा-शैली, आदर्श और नैतिकता, धर्म, विश्वास, मान्यताएँ, परम्पराएँ, गीत, संगीत, कला, विज्ञान, हमारे व्यवहार के तरीकों, भौतिक और अभौतिक प्रतीक, अनुसंधान और आविष्कार इत्यादि आते हैं।

<u>परिभाषा :</u>

'संस्कृति क्या है' तथा 'संस्कृति के अर्थ' को जानने के बाद अब यहाँ पर हम संस्कृति की परिभाषा पर प्रकाश डालेंगे।

संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक और समृद्ध है। विश्व की सभी संस्कृतियों में हमारी भारतीय संस्कृति का स्थान सर्वोच्च है। अनेक विद्वानों ने संस्कृति की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं, किन्तु सब का एक ही उद्देश्य मानव व्यवहारों, क्रिया कलापों, रीति-रिवाजों और सुधारना जान पड़ता है। संस्कृति एक मनुष्य के लिये अमूल्य निधि होती है। यह एक ऐसा पर्यावरणीय वातावरण होता है, जिसमें व्यक्ति रहता है और एक सामाजिक प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण अर्थात अपने आस-पास में मौजूद सभी प्राकृतिक उपादानों को, अपने जीवन-यापन के अनुकूल करने की शक्ति को अर्जित करता है। मानसिक रूप से संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित होती रहती है। संस्कृति की एक विशेष बात यह है कि यह मानव समाजों में ही केवल पाई जाती है जैसा कि 'कुसुम बाजपेयी' जी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' के प्रस्तावना में लिखा है कि -

"संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी मानसिक रूप से संचारित होती रहती है। संस्कृति केवल मानव समाजों में पाई जाती है। संस्कृति में मनुष्य निर्मित और वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं, जिनमें मनुष्य संशोधन कर सकता है।"[18]

विभिन्न प्रकाण्ड विद्वानों ने संस्कृति को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है जैसे -

1. जे. एल. गिलिन तथा जे. पी. गिलिन ने "एक सामाजिक समूह के सामान्य सीखे हुए व्यवहार को संस्कृति कहा है।"[19]

2.रेड फील्ड -"संस्कृति कला और उपकरणों से अभिव्यक्त परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है, जो परम्परा के द्वारा संगठित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।"[20]

3.व्हाइट महोदय-"संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरन्तर, संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।"21

4.डॉ. नगेन्द्र के अनुसार-"संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृतिक राग-द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है। सामयिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है।"[22]

5.डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार- "संस्कृति-विवेक बुद्धि का, जीवन को भले प्रकार जान लेने का नाम है।"[23]

6.डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।"[24]

संस्कृति की परिभाषा बताने वाले उपर्युक्त कई विद्वानों के अतिरिक्त और भी कई विद्वान हैं जिन्होंने संस्कृति के समूचे स्वरूप को परिभाषित किया है और अपना मत व्यक्त किया है, जिनमें प्रमुख हैं-

7- पंडित जवाहरलाल नेहरू - पंडित जवाहरलाल नेहरू ने रामधारी सिंह दिनकर की कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में अपनी प्रस्तावना के अन्तर्गत संस्कृति से सम्बन्धित कई विचारकों के मत को दिया है "संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गईं हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है। एक अन्य परिभाषा में वे कहते हैं कि-"संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।" यह मन आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।"[25]

8- ज्ञात होता है तकरीबन पिछले दो-तीन शताब्दियों से संस्कृति से सम्बन्धित कुछ नयी परिभाषाएं आयी हैं अर्थात् विकसित हुई हैं। डॉ. दिनेश्वर प्रसाद जी ने अपने निबन्ध 'लोक साहित्य और संस्कृति' में संस्कृति की परिभाषा का उल्लेख किया है। "मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। क्योंकि संस्कृति उसकी निजी उपलब्धि है।"[26]

संस्कृति के सम्बन्ध में' कुसुम बाजपेयी जी ने अपनी पुस्तक में कई और प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषाओं का जिक्र किया है। जैसे-

9. मैकाइवर और पेज-"यह मूल्यों, शैलियों, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है। इस प्रकार संस्कृति सभ्यता का बिल्कुल प्रतिवाद है। वह हमारे रहने और सोचने के ढंगों में, दैनिक क्रिया कलापों

में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"[27]

10. जोसेफ पीपर- "संस्कृति प्राणी की सभी प्राकृतिक वस्तुओं और उन उपहारों तथा गुणों का सार है, जो मनुष्य से सम्बन्ध रखते हुए भी उनकी आवश्यकताओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे है।"[28]

11- टायलर- "संस्कृति एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नीति, विधि, रीति-रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएँ और आदतें शामिल हैं।"[29]

भारतीय संस्कृति अनेकता में एकता का पाठ पढ़ाती है। सभी प्रसिद्ध विद्वानों ने उपर्युक्त परिभाषाओं के माध्यम से संस्कृति के विषय में आन्तरिक और भौतिक परिस्थितियों से परिचय कराया। मानव-व्यवहारों, उनके क्रिया कलापों, रीति-रिवाजों, खान-पान तथा रहन-सहन इत्यादि सभी चीजें हमारी संस्कृति के ही अन्तर्गत आती हैं।

<u>क्षेत्र :</u>

संस्कृति क्या है तथा संस्कृति के अर्थ एवं परिभाषा को जानने के पश्चात् अब हम यहाँ संस्कृति के क्षेत्र के बारे में जानेंगे। भारतीय संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। हमारे देश में भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान रहा है चाहे वह जीने की कला हो या राजनीति या विज्ञान का क्षेत्र,

सभी में इस संस्कृति का अग्रणी स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति के क्षेत्र के अन्तर्गत हम विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे।

1. **धार्मिक क्षेत्र -** जैसा सर्वविदित है कि सभी धर्मों, की अपने-अपने रीति-रिवाजों, परम्पराओं, रहन-सहन, खान-पान के साथ अपनी संस्कृति रही है। हमारी भारतीय संस्कृति की व्यापक दृष्टि का आधार उसके धार्मिक चिन्तन का होना है, जो राज्य कभी छोटे-छोटे जाति या वर्ग के संकुचित हित मे अपनी आस्था रखते थे, आज वह विश्व-व्यापी आस्था में स्वच्छंद विचरण करते हैं। भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं लेकिन फिर भी सब आपस में भाई-भाई की भाँति रहते हैं। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता अनेकता में एकता हैं। सामान्यतः यदि देखा जाये तो धर्म में आचार-विचार दोनों का सम्मिलित रूप मिलता है।
2. **राजनीतिक क्षेत्र -** भारतीय संस्कृति का राजनीति के क्षेत्र में अत्यंत व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों, धाराएँ तथा विभिन्न जातियों पर राजनीति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है, जिससे इन सभी क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति का विशेष योगदान रहता है। राजनीति क्षेत्र के अन्तर्गत व्यक्ति के मूल्यों, मनोभावों, मान्यताओं, विश्वास, व्यवहार, कर्तव्यों आदि को शामिल किया जाता है।

3. **वैयक्तिक क्षेत्र -** हमारे वेदों में वैदिक कालीन वैयक्तिक जीवन पर, वेद मंत्रों की विचारधारा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जैसा कि' डॉ. मंगलदेव शास्त्री' ने अपनी 'भारतीय संस्कृति का विकास' नामक पुस्तक में लिखा है कि -"ऋत और सत्य, निष्पाप भावना, श्रद्धा, आत्मविश्वास, ब्रह्मचर्य, व्रत, श्रम और तपस, वीरता और शत्रु- संहार (वृत-हनन) आदि की महिमा से ओत-प्रोत वेद-मंत्रों से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वैदिक धारा की दृष्टि से वैयक्तिक जीवन का सर्वांगीण विकास आवश्यक समझा जाता था।"[30]

4. **भौगोलिक क्षेत्र -** भारतीय संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक और विस्तृत है। वस्तुतः देखा जाये तो भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विविधताओं से युक्त देश है। इसके बावजूद इसका सांस्कृतिक रूप से अस्तित्व एक इकाई के रूप में बहुत ही प्राचीन समय से बना हुआ है। इस भौगोलिक अन्तर के साथ-साथ इस भारतीय देश में सामाजिक-धार्मिक, आर्थिक भिन्नता भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। इन सब विभिन्नताओं के बावजूद भी भारत की अन्य सभी संस्कृतियों से अलग सत्ता रही है।

5. **वैवाहिक क्षेत्र -** संस्कारों में सबसे प्रमुख स्थान विवाह-संस्कार का है। हमारे वैदिक ग्रन्थों में आज भी वे वेद मंत्र मौजूद हैं जो विवाह के समय पढ़े और उच्चारित किये जाते हैं। इन मंत्रों को ठीक उसी

तरह पढ़ा जाता है, जैसे हजारों वर्ष-पूर्व पढ़ा जाता था। मानव जीवन के इस मधुर-मिलन की बेला पर, वधू का हाथ पकड़ते हुए आज भी वर कहता है कि -

"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं, मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धि- र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।[31]

अर्थात् वर, वधू का हाथ पकड़ते हुए कहता है कि मैं तुम्हारा हाथ, सौभाग्य की समृद्धि के लिये पकड़ता हूँ, जिसकी वजह से हम और तुम दोनों पूर्णायुष्य को ग्रहण कर सकें। भग, अर्यमा, और दानशील सवितृ- देवता इन्हीं सब देवताओं ने तुम्हें गृहस्थ धर्म पालन करने के लिये मुझे दिया है।

<u>भारतीय संस्कृति के मुख्य घटक</u> :

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन और समृद्ध संस्कृति है। हमारी संस्कृति में कई ऐसी विशेषताएं हैं जो इसे अमरता प्रदान करती हैं तथा ऐसे कई तत्व विराजमान हैं जिससे विदेशी लोगों को भी भारतीय संस्कृति के द्वारा शान्ति मिलती है। हम यहाँ पर संस्कृति के ऐसे तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे जो अधूरे जीवन को पूर्णता प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति मिश्र संस्कृति है। हमारे देश में विभिन्न जाति-धर्मों के लोग रहते हैं। भारतीय संस्कृति के

विकास में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई इत्यादि सभी धर्म के मानने वालों का योगदान है। समाज शास्त्रियों के द्वारा भारतीय संस्कृति को दो वर्गों में बाँटा गया है।

(1) भौतिक संस्कृति

(2) अभौतिक संस्कृति

भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन वस्तुओं को लिया जाता है जो मानव जाति के व्यवहार में आती है। जैसे विभिन्न प्रकार के उपकरण, हथियार, औजार, रहने का मकान, घरों का सामान, आवागमन के साधन, बर्तन आदि वस्तुएँ।

अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, विधियाँ, धर्म और ज्ञान, कलाएँ आदि अमूर्त वस्तुएँ आती हैं।

कुल मिलाकर जो वस्तुएँ हमें दिखाई देती है वे भौतिक संस्कृति और जो हमें दिखाई नहीं देती हैं वह अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत आती है। भारतीय संस्कृति में अनेक ऐसे घटक हैं जो मानव जीवन को, सुसंस्कृति तथा सभ्य सामाजिक प्राणी बनाने पर योगदान देते हैं।

1. **अहिंसा -** संस्कृति के मुख्य घटकों में यह भी एक घटक है। अहिंसा का पालन करना हर किसी के लिये सरल कार्य नहीं है। सत्य, अहिंसा तथा अस्तेय इत्यादि ऐसी चीजें हैं जिसके द्वारा मनुष्य समाज, परिवार तथा देश में अधूरे जीवन को पूर्णता प्रदान

करते हैं। संस्कृति हमारी यही कहती है कि हमें किसी भी जीव को सताना या मारना नहीं चाहिये, क्योंकि हम किसी को भी मारकर पाप के भागीदार बनते हैं जिसकी सजा हमें जरूर मिलती है। हमारी संस्कृति ने ऐसे-ऐसे वीरों को जन्म दिया है जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही परोपकार में लगा दिया। श्रीराम, श्रीकृष्ण, राजा हरिश्चन्द्र, महात्मा गौतम बुद्ध इत्यादि ऐसे महापुरुष इस धरती पर उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये अपने प्राण त्यागने में तनिक भी संकोच नहीं किये। धन्य है ऐसी पृथ्वी जहाँ की संस्कृति अपने उच्चतर आदर्शों व गुणों के कारण आज भी अजर-अमर बनी हुई सभी देशों में अग्रणी स्थान रखती है। हम देखते हैं कि आज के युग में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ऐसे महापुरुष हुए हैं जो भारतीय संस्कृति के जीते-जागते प्रतीक के रूप में माने जाते हैं। हर धर्म के लोग उनका यशोगान, सम्मान करते हैं। बौद्ध काल में जैसा कि सर्वविदित है गौतम बुद्ध ने उस समय के क्रूर डाकू 'अंगुलिमाल' जो लोगों की उंगलियाँ काटने के बाद माला बना कर पहनता था, उसे किस प्रकार से अहिंसा का पाठ पढ़ाकर उसके पूरे जीवन को बदल डाला। अंगुलिमाल ने उसी दिन से हिंसा छोड़ अहिंसा के मार्ग पर चल पड़ा। महात्मा बुद्ध दूसरों के सुख के लिये अपने घर-परिवार को छोड़कर वन चले गये और वहाँ पर कई वर्षों तक कठिन साधना भी की। तत्पश्चात् वे

जीवन भर लोगों को उपदेश देते रहे कि सदा सत्य बोलो, किसी जीव को मारो नहीं, चोरी मत करो इत्यादि बातें वे गाँव-गाँव, शहर-शहर, घूमकर लोगों को बताते रहे।

2. **सत्यमेव जयते -** हमारे देश भारत में सत्यमेव जयते को ही राष्ट्रीय चिन्ह का प्रतीक माना गया है। सत्य बोलना, सत्य का पालन करना, अत्यन्त कठिन कार्य है। यह हर किसी के वश की बात नहीं है। सत्य का पालन करने वालों के सामने कदम-कदम पर खतरा रहता है और यह उस समय और भयानक हो जाता है जब सत्य का पालन करने वालों के परिवार में ही विपत्ति आ जाये। हमारी संस्कृति हमें यह शिक्षा देती है कि हमें असत्य नहीं बोलना चाहिये, सदा सत्य बोलना चाहिये, क्योंकि हमारे यहाँ झूठ बोलना पाप से भी बढ़कर माना जाता है। इसलिये सदैव सत्य बोलने का प्रयास करना चाहिये। सत्य बोलने वाला व्यक्ति निराश हो सकता है परन्तु पराजित कभी नहीं हो सकता। सत्य की सदैव विजय होती है। इसीलिये तो कहा जाता है कि "सत्यमेव जयते", "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"। हमारी संस्कृति में ऐसे-ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने संस्कृति के आदर्शों को आत्मसात करके, मानव जीवन को पूर्णता प्रदान की है। जैसा कि यह कथा प्रचलित है कि- राजा हरिश्चन्द्र ने एक बार सत्य बोलने की कठिन प्रतिज्ञा की थी। विश्वामित्र ने उनकी परीक्षा लेने उनके द्वार पर पहुँचे और भिक्षा

मांगी। राजा ने कहा आपको क्या चाहिये? तो विश्वामित्र ने कहा कि पहले आप प्रतिज्ञा करें कि जो कुछ मैं कहूँगा वह मिलेगा। राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। विश्वामित्र ने राजा से कहा - सारा राज-पाट दान में हमें दे दीजिए, राजा ने अपने वचन को निभाने के लिये दान दे दिया और दक्षिणा भी देने की बात कह दी। तब विश्वामित्र ने कहा दक्षिणा तुम कहाँ से दोगे? अब तो सारा राज-पाट, धन-वैभव सब कुछ तो मेरा हो चुका। इसके पश्चात राजा ने अपने वचन का पालन करने के लिये अपनी पत्नी को एक घर में नौकरी पर रख दिये तथा स्वयं श्मशान घाट पर कार्य करने लगे। अपने पुत्र की मृत्यु के बाद बिना 'कर' लिये उन्होंने शव को जलने न दिया। यह सब राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य का पालन करने के लिये और दिये गये वचन को निभाने के लिये किया। युधिष्ठिर, महात्मा गांधी, राजा दशरथ, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, भीष्म इत्यादि ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये कठिन बाधाओं को पार किया। जैसा कि 'सत्य' की उपयोगिता को बताते हुए विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि- आदित्येनोत्तभितं नभः। सत्येनोत्तभिता भूमिः। सत्य से ही पृथ्वी टिकी हुई है। आदित्य से ही आकाश थमा हुआ है। सत्य की निरंतर खोज की भावना ने ही भारतीय संस्कृति को उदार और तेजस्वी बनाया है। धर्म के चार पावों में से सब टूट जाते हैं, पर

सत्य के पांव पर वह खड़ा रहता है। सत्य का साक्षात्कार, सत्य का आचरण और सत्य का मनन, ये तीनों किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता के मापदण्ड होते हैं।"[32]

इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि सत्य ही सब कुछ है, सत्य के द्वारा बड़ी-बड़ी समस्याओं पर हम विजय प्राप्त कर सकते हैं। सत्य के साथ-साथ धैर्य का होना भी नितान्त आवश्यक है।

3. **आभूषण -** भारतीय संस्कृति के प्रमुख घटकों में आभूषण का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राचीन काल से ही रहा है। सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा मोहनजोदड़ों की खुदाई में ऐसे साक्ष्य भी मिले हैं जिनसे यह पुष्टि हो जाती है कि उस समय से ही आभूषण को पहनने का प्रचलन शुरू हो गया था। जैसा कि प्रख्यात सम्पादक 'वियोगी हरि' ने अपनी पुस्तक 'हमारी परम्परा' में सिंन्धु घाटी के लोगों के आभूषणों के पहनावे के सम्बन्ध में कहते हैं कि "पुरुष और स्त्रियाँ सभी आभूषण पहनते थे। स्त्रियाँ पंखे के आकार की ओढ़नी रखती थीं। सिर के दोनों ओर झालर पहनी जाती थी, जो सोने, चांदी, ताँबें या मनकों की होती थी। ललाट पर पट्टी या झलार होती थी। कुंडल सोने, चांदी, ताँबे आदि के बनाये जाते थे। हार के विविध रूप मिले हैं। अंगूठी, चूडियाँ और बाजूबन्द पहनने

का बहुत रिवाज था। ऐसे बाजूबंद भी मिले हैं, जहाँ गोल पत्ते के साथ छह लड़ियाँ जुड़ी हुई हैं।"[33]

आभूषण हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। स्त्री हो चाहे पुरुष सभी आभूषणों के द्वारा अत्यन्त ही शोभायमान प्रतीत होते हैं। छोटे-छोटे बच्चों से लेकर बड़े बुजुर्ग सभी आवश्यकतानुसार आभूषणों को अपने शरीर पर धारण करते हैं। शादी-विवाह हो या कोई भी मांगलिक कार्य इत्यादि शुभ अवसरों पर आभूषण का शरीर पर होना अत्यन्त शुभ माना जाता है। आज के युग में हम देखते हैं कि शादी-विवाह में गहनों का प्रचलन बहुत ही तेजी से हो रहा है। हमारे हिन्दू धर्मों में तो शादी के पहले ही अर्थात सगाई (engagement) के समय ही सोने-चांदी से बने गहनें को वर पक्ष, कन्या पक्ष को देता है। शादी के समय स्त्रियों के शरीर को तरह-तरह के गहनों और कपड़ों के माध्यम से सजाया जाता है, जिसे धारण करने के पश्चात स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दर और आकर्षक लगती हैं। आभूषण हमारे शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र में विभिन्न विद्वानों ने आभूषण को शरीर पर धारण करने से उत्पन्न सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए कहा है कि -

भामह के अनुसार -

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति बनितामुखम्"[34]

भामह, अलंकार (आभूषण) को किसी भी काव्य का आवश्यक प्राणतत्व समझते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार एक स्त्री का मुख सुन्दर होने पर भी बिना आभूषण के खूबसूरत नहीं लगता अर्थात् सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार से अलंकार विहीन काव्य शोभा सम्पन्न होते हुए भी व्यर्थ है।

दण्डी के अनुसार -

"काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते"[35]

इसी प्रकार से हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों तथा लेखकों ने आभूषण (अलंकार) के महत्व को प्रतिप्रादित करते हुए कहा है। जैसे -

केशवदास -

हिन्दी के रीतिकालीन कवि आचार्य केशवदास जी ने अपनी कविता में भी अलंकारों (आभूषण) का होना आवश्यक माना है।

"भूषण बिनु न बिराजई, कविता, वनिता मित्त"36

अर्थात् केशव दास जी कहते हैं कि आभूषण के बिना न तो कविता शोभायमान होती है, और न ही स्त्री और मित्र। इसलिये इन सभी में अलंकार (आभूषण) का होना नितांत आवश्यक है।

डॉ. श्याम सुन्दर दास -

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं आलोचक डॉ. श्यामसुन्दर दास भी आभूषण का महत्व बताते हुए भारतीय संस्कृति के अंगो के रूप में काव्य का अनिवार्य तत्व मानते हुए कहते हैं कि "जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकार भाषा की सौन्दर्य वृद्धि करते, उसके उत्कर्ष को बढ़ाते, रस, भाव और आनन्द को उत्तेजित करते हैं।"[37]

इसी प्रकार देव, भिखारी दास, डॉ. गुलाबराय इत्यादि कवि अपने काव्यों तथा ग्रन्थों में आभूषण को, जिस प्रकार से शरीर के शोभाकारक

धर्म मानते हैं उसी प्रकार से अलंकार को भी काव्य का शोभा कारक धर्म मानते हैं। आभूषण के बिना जिस प्रकार एक स्त्री के सौन्दर्य में अधूरापन रहता है, उसी प्रकार से यदि काव्य में अलंकार न हो तो वास्तव में काव्य न होकर एक नीरस काव्य के रूप में हो जाता है। इसलिये भारतीय संस्कृति में आभूषण का प्रयोग समय-समय पर होने वाले, विवाहोत्सव, नवरात्रि, दुर्गा पूजा, करवाचौथ इत्यादि शुभ कार्यो में किया जाता है।

4. **आध्यात्मिकता -** अभौतिक संस्कृति में संस्कृति के आन्तरिक पक्षों पर अत्यधिक बल दिया जाता है। धर्म ग्रन्थों में अच्छे व्यक्ति के जो लक्षण दिये गये हैं वे सभी लक्षण आध्यात्मिक संस्कृति के अंग के रूप में ही हैं। इसके अतिरिक्त हमारे मनु स्मृति में जो दस लक्षण बताये गये हैं उनमें - (1) धृति (2) क्षमा (3) दम (4) अस्तेय (5) शौच (6) इन्द्रिय-निग्रह (7) घी (8) विद्या (9) सत्य (10) अक्रोध आते हैं। ये सभी लक्षण भारतीयों की आध्यात्मिक और मानसिक संस्कृति के अंग के रूप में ही गिने जाते हैं।

   आध्यात्मिकता के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि इसमें इस नश्वर शरीर का तिरस्कार किया जाता है। मनुष्य मानव शरीर से मुक्ति की आशा रखता है। वह बार-बार के आवागमन की भावना से मुक्त होना चाहता है। तप, सत्य, अहिंसा, परलोक, यश इत्यादि आध्यात्मिक मूल्यों को वह अत्यधिक महत्व देता

है। भगवान के प्रति उसकी आस्था, दृढ़ विश्वास तथा लगन अधिक होती है। भारतीय संस्कृति में विस्तार पाया जाता है, क्योंकि यह तपोवन-संस्कृति रही है। इसमें आत्मा, संकुचित घेरे से ऊपर उठकर सर्व व्यापक रूप में विद्यमान होती है। भारतीय संस्कृति में इस नश्वर शरीर से तिरस्कार की भावना ने बड़े-बड़े महापुरुषों को अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर की प्रवृत्ति को विशेष बल दिया है। जैसा कि डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है कि- "नश्वर शरीर के तिरस्कार की भावना हमारे यहाँ के लोगों को बड़े-बड़े बलिदानों के लिये तैयार कर सकी। शिवि, दधीचि, मोरध्वज इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। महाराज दिलीप ने गुरु की प्रसन्नता के लिये नन्दिनी नाम की गौ को चराने का व्रत धारण किया था। उसकी सिंह से रक्षा करने के लिये वे अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करने को तैयार हो जाते हैं।"[38]

हम जानते हैं कि इस शरीर को नाशवान समझकर इसे छोड़ने का मोह जरा सा भी इन महापुरुषों मे नहीं है बल्कि ये सत्य, अहिंसा, यश की प्राप्ति के लिये, तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये अपने शरीर को त्यागने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं जैसा कि राजा दिलीप, नन्दिनी गाय की रक्षा करने के लिये सिंह के सम्मुख पहुँचकर कहते हैं कि- "यदि तुम मुझ पर दया ही करना

चाहते हो तो मेरे यश-शरीर पर दया करो; पंचभूतों से बने नाशवान शरीर के पिण्डों पर मुझ जैसे लोगों की आस्था नहीं होती।"[39]

5. **धर्म : रीति-रिवाज, परम्पराएँ -** प्राचीन काल से ही धर्म का विशेष महत्व भारत में रहा है। भारत में विभिन्न प्रकार के धर्मों तथा समुदायों के लोग रहते हैं, जिसके कारण भारत में विविधता दिखाई देती है फिर भी भारत में 'अनेकता में एकता होना' भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसा कि प्राचीन काल से भारत को एक धर्मस्थली के रूप में जाना जाता रहा है और आज भी हम देखते हैं कि धर्म का महत्त्व जितना ज्यादा भारत में है उतना किसी और देश में नहीं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में भी धर्म के रूप को ज्ञात करने के लिये मुख्य आधार मुद्राएं हैं; तथा कई प्रकार के मिट्टी के बने बर्तन, धातु की बनी छोटी-बड़ी आकृतियाँ, विभिन्न प्रकार से बनी पत्थर की मूर्तियां है जिससे हम उस समय के धार्मिक विश्वासों को समझ सकते हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता में प्रचलित धर्म के स्वरूप के बारे में चर्चा करते हुए वियोगी हरि अपनी पुस्तक 'हमारी परम्परा' में कहते हैं कि-"वे लोग माता के रूप में देवी की पूजा करते थे। इसी तरह वृक्षों, उनमें रहने वाले देवी-देवताओं, पशुओं व पशु-राक्षसों को भी पूजते थे।"[40]

भारत में विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते हैं। कोई हिन्दू धर्म को मानता है तो कोई मुस्लिम, सिक्ख तथा इसाई धर्म को। हिन्दू धर्म में सबसे प्राचीन धर्म' वेद' को माना जाता है। वेद चार हैं - (1) ऋग्वेद (2)यजुर्वेद (3) सामवेद (4) अथर्ववेद

इन वेदों में धर्म से सम्बन्धित अनेक प्रकार की बातें लिखी गईं हैं जो कि अकाट्य मानी जाती हैं। वैदिक साहित्य को चार कालों में विभाजित किया गया है जिसका उल्लेख निम्नलिखित है। "संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद। संहिताओं का रचनाकाल साधारणतया ई. पू. 2000 से लेकर 1500 तक माना जाता है और मुख्य उपनिषदों का काल ई. पू. 600, मध्यवर्ती एक या डेढ़ हजार वर्ष को वैदिक काल कहा जाता है। ये चार काल धर्म-संस्था के उत्तरोत्तर विकास को प्रकट करते हैं।"[41]

भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न रीति-रिवाज और परम्पराएं प्रचलित रहीं हैं। हर धर्म के लोग अपने-अपने अनुसार रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का अनुसरण करते चले आ रहे हैं। हिन्दू धर्म की यदि बात की जाये तो इसमें कई प्रकार के देवी-देवताओं की आराधना की जाती है तथा सभी देवी-देवताओं को एक ही भगवान के कई रूपों में माना जाता है। विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों जैसे तुलसी, पीपल, नीम इत्यादि की पूजा की जाती है। विभिन्न त्योहारों जैसे दीपावली, होली, दशहरा, रक्षाबन्धन

इत्यादि परम्पराएँ प्राचीन काल से आज तक चली आ रही हैं जिसे प्रत्येक समाज अपनी-अपनी परम्पराओं के अनुरूप उनका अनुसरण करता है। हिन्दू धर्म तथा रीति-रिवाज और परम्पराओं को कुसुम वियोगी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में इस प्रकार से उल्लेख किया है।

"हिन्दू धर्म में सुधार 19वीं सदी में शुरू हुआ। परम्परागत हिन्दू धर्म तथा सामाजिक सुधार एवं उस समय प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तो के बीच सामजस्य बिठाने के प्रयास करने वालों में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और राजाराम मोहन राय प्रमुख थे। बाल विवाह रोकने, सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने तथा विधवा विवाह की अनुमति जैसे मुद्दे सामने आये।"[42]

इस प्रकार से कुछ रीति-रिवाज तथा परम्पराओं में संशोधन करके उन्हें पहले से बेहतर बनाया गया, जिससे हर व्यक्ति को समानता का पाठ पढ़ाया जा सके तथा समाज में हर किसी को सिर उठा के जीने के योग्य बनाया जा सके।

6. **प्रकृति प्रेम -** भारत में प्रकृति का स्थान सबसे विशिष्ट माना जाता है। प्रकृति के द्वारा ही हम अपने जीवन की कल्पना कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार की ऋतुएँ भारत में पायी जाती हैं जो समय-समय पर स्वतः आती रहती हैं औऱ समयानुकूल फल तथा फूलों का सृजन करती हैं। धूप तथा वर्षा के कारण ही यह भूमि

अत्यन्त आकर्षक एवं मनोहारी शस्य श्यामला हो जाती है। हमारे देश में सूर्य और चन्द्रमा के दर्शन करना अत्यन्त ही शुभ समझा जाता है। भारतीय ऋषि मुनि लोग जंगलों में ही रहना पसन्द करते थे, क्योंकि वहाँ सुख और शान्ति मिलती थी। साधना में प्रकृति के सुरम्य वातावरण का बहुत योगदान होता है जिससे साधना, पूजा-पाठ इत्यादि में मन रमा रहता है।

7. **संस्कार -** संस्कृति के प्रमुख घटकों में संस्कार का अत्यधिक महत्व है। संस्कार-विहीन मनुष्य, मनुष्य न होकर पशु के समान माना जाता है। भारतीय संस्कृति हमें संस्कारवान तथा विनम्र बनाती है। हमें बड़ों के सामने नहीं बैठना चाहिये। खाना हमेशा बैठकर खाना चाहिये। हमें अपने माता-पिता तथा अन्य सभी सदस्यों का सम्मान करना चाहिये। सुबह उठकर माता-पिता के पैर छूना, बड़ों का आशीर्वाद लेना, धरती माता को प्रणाम करना, इत्यादि कार्य संस्कार के अन्तर्गत ही आते हैं। संस्कार वान व्यक्ति जीवन में सदैव उच्च सम्मान तथा उन्नति प्राप्त करता है। 'वियोगी हरि' अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में संस्कार के महत्व को बताते हुए लिखते हैं कि- "अधिकतर हिन्दू अब भी जीवनचक्र अनुष्ठानों का पालन करते हैं। परिष्कार और परिवर्तन के इन संस्कारों का उद्देश्य पापों को दूर करके या नये गुणों की

उत्पत्ति से व्यक्ति को निश्चित उद्देश्य या जीवन के अगले चरण के लिये तैयार करना है।"[43]

8. **आत्म-विश्वास -** भारतीय संस्कृति का एक घटक है आत्म विश्वासी बनाना। समाज में व्यक्ति सदैव एक-दूसरे के प्रति आस्था या अनास्था अर्थात् प्रेम या क्रोध की भावना से ओत-प्रोत होता है। किसी भी कार्य को हम तब तक पूरा नहीं कर सकते जब तक हम खुद अपने कार्य के प्रति आश्वस्त न हो जायें कि अमुक कार्य हमसे होगा या नहीं। अगर हमें दृढ़ आत्म-विश्वास है कि मैं इस कार्य को कर लूंगा तो अवश्य ही वह कार्य पूर्ण हो जायेगा। यदि हमें लगता है कि इस कार्य को नहीं कर सकते तो ज्यादा सम्भावना है कि वह कार्य हम न कर सकें।

9. **मूर्तिपूजा -** भारतीय संस्कृति के प्रमुख घटकों में एक घटक मूर्तिपूजा भी है। मूर्ति पूजा का हिन्दू धर्म में बहुत महत्व है। हम देखते हैं कि जिन देवी-देवताओं की पूजा की जाती है वे सभी देवता एक ही ईश्वर के अनेक रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। राम, कृष्ण, शिव, गणेश इत्यादि ईश्वर की मूर्तियों को हम पूजते हैं तथा उनके प्रति सच्ची आस्था रखते हुए सुख, शान्ति तथा स्वस्थ शरीर की कामना करते हैं "मूर्तिपूजा में आस्था हिन्दू धर्म की अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। पूज्य- मूर्ति एक जैसी नहीं होती हैं, अपितु यह अनेक धर्म सम्प्रदायों में

अलग-अलग होती हैं। हर एक धर्म सम्प्रदाय की एक मूर्ति होती है (राम, कृष्ण, शिव, गणेश, हनुमान, आदि) जो भिन्न-भिन्न मन्दिरों में स्थापित होती हैं और सदस्य समय-समय पर उनकी पूजा-अर्चना करते हैं।"[44]

इस प्रकार कि भारतीय संस्कृति के द्वारा हम सभ्य, संस्कारवान और उत्तम चरित्र का निर्माण कर सकते हैं। संस्कार जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। संस्कृति के उपर्युक्त सभी घटक सामाजिक जीवन में विशेष महत्व रखते हैं। जीवन के हर कठिन परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति के इन घटकों का विशेष योगदान होता है। भारतीय संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों में विशेष स्थान रखती है। इसे अन्य देशों की संस्कृतियों की जन्मदात्री कहा जाता है।

<u>संस्कृति एवं समाज</u> :

मनुष्य की साधनाओं की सबसे उत्तम परिणति संस्कृति है। संस्कृति समाज को संस्कारित करती है। आज सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति लगातार बढ़ता अविश्वास और मनुष्य के प्रति मनुष्य की अनास्था ने समाज में अशांति का सृजन किया है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में विद्वान आचार्य, ब्राह्मण, गुरु इत्यादि का सम्मान एवं आदर करने की परम्परा रही है, माता-पिता के पैर छूना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना,

नहाकर खाना-खाना, जमीन पर बैठकर खाना आदि सभी बातों का समुचित ज्ञान हमें भारतीय संस्कृति के द्वारा मिल जाती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होता है वह समाज में ही रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मनुष्य एकांत में नहीं रह सकता है, वह अपने माता-पिता, परिवार के सदस्यों के साथ समाज में रहता है, जहाँ पर एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के अर्थात् एक सदस्य दूसरे सदस्य के सुख-दुःख में सदैव भागीदार रहते हैं। सभी सदस्य आपस में मिलकर सुखपूर्वक जीवन यापन करते हैं। जैसा कि पारिवारिक सदस्यों के सम्बन्ध में जय प्रकाश मिश्र लिखते हैं कि- "मनुष्य समाज की सबसे छोटी इकाई है, परन्तु वह एकांतवासी नहीं रह सकता। अतः उसके निवास-योग्य सबसे छोटा स्थान परिवार ही होता है, जहाँ एक परिवार के सभी सदस्य सुख-दुःख के भागीदार बनकर जीवन यापन करने में आनन्द एवं संतोष अनुभव करते हैं। आज के समाज में परिवार के विखंडन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है तथा अब तो केन्द्रीय परिवार की अवधारणा ही बलवती हो चली है।"[45]

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता हैं क्योंकि किसी भी साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब होता है। जिस काल का साहित्य होता है उस काल की जनता का रहन-सहन, खान-पान तथा रीति-रिवाज की जानकारी मिल जाती है। हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान और आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है कि "जब कि प्रत्येक देश

का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[46]

यदि हमें किसी भी देश या राज्य की संस्कृति एवं समाज से परिचित होना है तो वहाँ का साहित्य इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी भी कवि या लेखक का जन्म जिस समाज में होता है वह वहाँ की संस्कृति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ जाता है, जिससे साहित्य लेखन के समय वह अपने आस-पास के वातावरण और सांस्कृतिक प्रभाव को छोड़ नहीं पाता है और उपर्युक्त प्रभाव साहित्य में आ ही जाते हैं।

संस्कृति एवं समाज मनुष्य के जीवन के आधारस्तंभ हैं। इनके अभाव में हम सभ्य मानव की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति हमें एकता का पाठ पढ़ाती है। भारतीय संस्कृति पूर्णता की ओर एक प्रकार की यात्रा है, इसलिये यह अधूरी रहते हुए भी, साकांक्ष होती हुई भी सापेक्षता को लेकर चलती है। भारतीय संस्कृति को जीवित रखने के लिये हमें समय-समय पर इसकी रक्षा भी करनी होगी। विद्यानिवास मिश्र जी लिखते हैं कि- "भारतीय संस्कृति उस सदाजीवा की तरह रस गर्भ है। उसे हरी-भरी देखना हो तो अपना पानी उसे आप दें। आप में पानी है तो वह हरी-भरी है। भक्त रैदास ने पानी की ही पुकार लगाई थी, जब उन्होंने कहा था कि 'प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी; प्रभु जी तुम दीया हम बाती। व्यक्ति ही किसी संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।

चंदन पानी के साथ घिसे न तो वह काष्ठखंड मात्र है, बाती के बिना लौ कहाँ है।"[47]

"भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों की जननी भी मानी जाती है। हमारा भारत एक प्राचीन राष्ट्र है जिसकी एक अलग ही अपनी संस्कृति है। मानवतावादी दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति की सबसे बहुमूल्य निधि है। भारतीय संस्कृति में आचार्य, विद्वान, ब्राह्मण आदि का सम्मान करने की अति प्राचीन परम्परा रही है। राजपरिवारों में उन्हें पर्याप्त सम्मान दिया जाता था। कुमार कृष्णवर्धन और आचार्य सुगतभद्र के आपसी व्यवहारों से यह बात अनेक स्थलों पर स्पष्ट होती है। मानवतावादी दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। तथापि यह जरुरी नहीं कि मानवतावादी दृष्टिकोण या मनुष्यता उच्च वर्ग के पास ही हो।"[48]

हमारा भारत समृद्धशाली और महान राष्ट्र के रूप में प्रख्यात है। जिसकी संस्कृति में अनेक ऐसे तत्व हैं, जो भारतीय मनुष्यों को एकता के सूत्र में पिरोते हैं। शास्त्र, वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत, गीता, रामायण इत्यादि हमारी महान संस्कृति के विविध अंग हैं। सामान्यतः संस्कृति राष्ट्र की आत्मा के रूप में विद्यमान होती है, न कि उसका स्वरूप विज्ञान की तरह सार्वभौमिक होता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक 'वासुदेव शरण अग्रवाल' संस्कृति एवं समाज के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "संस्कृति का राष्ट्र के साथ अनिवार्य सम्बन्ध होता है। विचार और कर्म के क्षेत्र में जो राष्ट्र का सर्जन है, वही उसकी संस्कृति है। संस्कृति मनुष्य

के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है।"[49]

समाज और संस्कृति का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वर्तमान, भूत और भविष्य में मनुष्य के जो भी क्रिया-कलाप के प्रकार हैं उन्हें संस्कृति कहते हैं। किसी भी सामाजिक व्यक्ति के जीवन जीने का तरीका, कला, रूचि इत्यादि सभी संस्कृति ही है।

हम समाज में जो भी उपलब्धियाँ या मान-सम्मान प्राप्त करते हैं तथा राष्ट्र के निर्माण में जिसका सर्वोच्च स्थान है, जिसके द्वारा एक राष्ट्र की सच्ची पहचान होती है उसे संस्कृति कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. आबिद हुसैन 'राष्ट्र और संस्कृति' के सम्बन्ध में कहते हैं कि - "जब किसी समाज में राजनीतिक एकता के साथ सांस्कृतिक एकता भी होती है तभी उसे राष्ट्र कहा जाता है। सांस्कृतिक एकता के कारण ही राष्ट्र में मूलभूत एकता का निर्माण होता है जो विकट परिस्थितियों में भी राष्ट्र को अमर बना सकती है।"[50]

इस तरह से यदि देखा जाये तो संस्कृति एवं समाज का व्यक्ति की प्रगति में अत्यधिक योगदान है क्योंकि समाज में रहने वाला व्यक्ति संस्कृति से अछूता नहीं रह सकता। हाँ ये बात और है कि हर एक समाज की एक अलग संस्कृति हो सकती है। मुस्लिम समाज की संस्कृति, हिन्दू समाज की संस्कृति से भिन्न हो सकती है। सभी धर्मों के लोग अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार कार्य करते हैं। हिन्दू धर्म में

दीपावली, होली, रक्षाबन्धन, नवरात्र इत्यादि पर्वों को हिन्दू रीति से मनाते हैं, वहीं पर यदि देखा जाये तो मुस्लिम संप्रदाय के लोग इन त्योहारों को नहीं मनाते बल्कि वे अपनी संस्कृति के अनुसार ईद, मोहर्रम, बकरीद इत्यादि पर्वों को अपनी संस्कृति के अनुसार मनाते हैं।

प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

प्रागैतिहसिक कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी का जन्म सन् 1891 ई. में हुआ था तथा मृत्यु 1961 ई. में हुई थी। इन्होंने अपने रचना संसार में अनेक प्रकार की कहानियाँ, उपन्यास, नाटक आत्मकथा तथा गद्यकाव्य की रचना की इनकी कहानियों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। ऐतिहासिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक इत्यादि। इनकी कहानियाँ महात्मा बुद्धके समय से मिलती हैं। अध्ययन के दौरान मैंने इनकी अधिकतर कहानियों को पढ़ा तथा समझा परन्तु मुझे इनकी प्रागैतिहासिक काल की कोई कहानी नहीं मिली। अत: मैं अपने प्रस्तुतशोध ग्रंथ में प्रागैतिहासिक काल की किसी भी कहानी का उल्लेख नहीं कर सका हूँ।

ऐतिहासिक कहानियाँ:

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी प्रारम्भ से ही इतिहास में रुचि रखते थे। जैसे-जैसे इनका अध्ययन का क्षेत्र बढ़ता गया, इनकी इतिहास में

रुचि भी बढ़ती गई। इन्होंने सन् 1906-07 में लेखनी को छुआ और एक कविता लिखी जब वह कक्षा 6 में थे। इसके बाद शास्त्री जी के हाथ में मेवाड़ के इतिहास की एक पोथी लगी उस पोथी का नित्य पाठ करने से मेवाड़ की वीरगाथा की छाप इनके हदय में उमड़ पड़ी और ये वीरतापूर्वक कहानियाँ भी लिखने लगे। धीरे-धीरे इनका रचना संसार विस्तृत होता गया और ये विविध प्रकार की ऐतिहासिक, काल्पनिक, राजपूती आदि कहानियाँ लिखने लगे ।आचार्य जी का मानना था कि इतिहास का सत्य 'चिर' सत्यहोता है और साहित्य का सत्य 'स्थिर'। 'चिर' सत्य का अर्थ होता है अमुक काल में ऐसा हुआ और 'स्थिर' सत्य का अर्थ होता है अमुक काल में ऐसा होता था। इन्हीं कारणों से शास्त्री जी ने एक नवीनरस 'इतिहास रस' की स्थापना की, जिसका तात्पर्य यह था कि साहित्यकार इतिहास के तत्वों को यथावत वर्णन करने के लिये जरूरी नहीं है। साहित्यकार अपनी कल्पना और भावनाओं का पूरा प्रयास साहित्य लेखन में कर सकता है। आचार्य जी अपने स्वभाव को व्यक्त करते हुए स्वयं कहते हैं कि "मेरे मन में क्रोध बहुत है, तीव्रता भी कम नहीं। कलुष का भी अंत नहीं परन्तु साहित्य सृजन में तो मैं केवल दो ही वस्तुएँ काम में लेता हूँ, धैर्य और न्याय। किसी भी दशा में मैं इनसे इधर-उधर नहीं होता। अपनी संपूर्ण चेतना से मैं शक्ति-भर सावधान रहकर ही काम चलाता हूँ।"[51]

आचार्य जी पहले एक प्रसिद्ध चिकित्सक भी थे, जिस कारण से इनका राजा-महाराजाओं और अमीर सेठों के घरों में आना-जाना लगा रहता था। जिसके कारण उनके घर के भेदों को ये भली भाँति जान लेते थे और इन्हें अपनी कहानियों में गोपनीय और रहस्यपूर्ण चरित्रों का अंकन करने में आसानी हो जाती थी, क्योंकि एक कहानीकार को कहानी लिखने के लिये चरित्र, स्वभाव, जीवन, दाँव-पेच, मानसिक घात-प्रतिघात का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना होता है। आचार्य जी की कहानी चाहे जिस प्रकार लिखी गयी हो परन्तु उसमें जीवन की व्याख्या मौजूद रहती है, क्योकिं इनका मानना था कि जीवन की व्याख्या का नाम ही साहित्य है।

अपने कहानी लेखन के सम्बंध में शास्त्री जी ने जिस प्रकार से विपरीत परिस्थितियों का सामना तथा असीमित मेहनत किया था, उसका जिक्र करते हुए वे अपने एक वक्तव्य में कहते हैं कि -"कहानियों मे मैंने बहुत परिश्रम किया। मैं नहीं जनता कि चोरी के लेखकों कि क्या शैली है, परंतु अपनी एक कमजोरी तो कहूँगा ही कि अपनी कहानी के साथ मैं बहुत काल तक रहता हूँ। मैं उसमे डूबता हूँ। उसे घिल-मुलकर डालता हूँ। फिर उसे रस्सी की भाँति उमेठ डालता हूँ। इसके बाद उसे रुई कि तरह धुनता हूँ। कहानी के साथ ही अपने हृदय और मस्तिष्क की भी मैं यही गत बना डालता हूँ। फिर कहानी और मैं एक हो जाते हैं। तब मैं उनके साथ रोता, हँसता, गाता और नाचता हूँ।"[52]

साहित्य की समालोचना के संदर्भ में शास्त्री जी ने कई प्रसिद्ध समालोचकों की समालोचना पर उँगली उठाई है। इनका कहना है कि कुछ ऐसे लेखक हैं जो कक्षा में बच्चों को पढ़ाते- पढ़ाते आलोचना करने का प्रयास करते हैं। परन्तु इन्हें तो आलोचना करने का ज्ञान भी नहीं होता है। जैसा कि शास्त्री जी अपनी 'बाहर- भीतर' कहानी संग्रह में 'कहानीकार का वक्तव्य' में लिखते हैं कि- "उनकी समालोचना की टेकनिक एक प्रकार से निर्जीव यान्त्रिक सी होती है। इनमें बहुत से तो ऐसे हैं जिनका साहित्य में बड़ा नाम है, पर जिस विषय की वे समालोचना करते हैं उस विषय पर उनका अध्ययन नगण्य ही है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी और अध्यापक गुलाबराय जैसे पुराने प्रकाण्ड अध्यापकों तक को समालोचना क्षेत्र में मैं दयनीय समझता हूँ। तब नये आलोचकों की बात तो मैं क्या कहूँ। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पढ़कर मैंने उन्हें लिखा था, या तो आप 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के लेखक हैं या इस 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के। ये दोनों रचनाएँ एक ही पुरुष की नहीं हो सकती।"[53]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी अपने लेखन के दौरान कभी किसी के सामने झुके नहीं। हमेशा सत्य का साथ देते रहते थे। जैसा हम सब जानते ही हैं कि सच्चाई कड़वी होती है, इसके बावजूद आचार्य जी को जहाँ कहीं भी लगा कि गलत हो रहा है, वहाँ पर अपनी हानि-लाभ की परवाह न करते हुए सत्य का ही साथ देते थे। वह बहुत ही स्वाभिमानी

तथा अक्खड़ स्वभाव के थे, जिससे इन्हें कहीं भी कोई अनुचित कार्य देखने को मिलता तो इनकी वाणी स्वत: आग उगलने लगती। यहाँ तक कि इन्होंने अपने वैद्यक पेशे के दौरान भी राजाओं-महाराजाओं तथा मरीजों के घर आते- जाते रहने के कारण उनके घरों का काला चिट्ठा अपनी लेखनी में ज्यों का त्यों उतार देते थे, जिसके कारण इनके बहुत से ग्राहक नाराज भी हो जाते थे, परन्तु इन सब की परवाह किये बगैर अपने साहित्य लेखन को सुचारु रूप से जारी रखा।

आचार्य जी की कुल प्रकाशित रचनाएँ 186 हैं जिनका उल्लेख पहले अध्याय में किया जा चुका है। इनकी समस्त कहानियों को एकत्रित करके'हिन्द पॉकेट बुक्स' ने पाँच भाग में, पाँच कहानी संग्रह तैयार किया। जिनके शीर्षक अलग- अलग हैं। जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

(1) बाहर - भीतर - भाग - 1

(2) दुखवा मैं कासे कहूँ - भाग - 2

(3) धरती और आसमान - भाग - 3

(4) सोया हुआ शहर- भाग - 4

(5) कहानी खत्म हो गई - भाग - 5

इन संग्रहों के अतिरिक्त इनकी एक बाल कहानियों का संग्रह भी है जिसका नाम है 'दस बाल कहानियाँ'। अब हम यहाँ आचार्य जी की कहानियों में प्रमुख, ऐतिहासिक कहानियों का वर्णन करेंगे। इनका पहला कहानी संग्रह है -

बाहर भीतर भाग - 1 (प्रथम कहानी संग्रह)

यह कहानी संग्रह आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की प्रथम कड़ी है। जिसमे कुल 18 कहानियाँ सम्मिलित है। इन कहानियों में ऐतिहासिक, अर्ध-ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कहानियाँ भी हैं। यहाँ हम सिर्फ ऐतिहासिक कहानियों में उपस्थित संस्कृति का वर्णन करेंगे। इस संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ हैं -

1- 'बावर्चिन' -

आचार्य जी की यह मुगल कालीन कहानी है जो मुगल बेगमों के आँसुओं का रेखा चित्र प्रस्तुत करती है तथा उस समय के अंतिम मुगल सम्राट 'बहादुर शाह' के पतन तथा विनाश की दारुण कथा को अभिव्यक्त करती है। इस कहानी में कहानीकार ने मुगल कालीन संस्कृति का अनोखा और सत्य घटना का जिक्र किया है। इस मुगल शासक के राज्य का पतन किस प्रकार हुआ, इसका चित्रण हुआ है। इस ऐतिहासिक कहानी में एक ऐसी संस्कृति का चित्रण किया गया है, जिसमें मुगल बेगम ने अपने पिता की रक्षा के लिये अपने प्यार तक को ठुकरा दिया है। इस कहानी में उस समय मौजूद दिल्ली की संस्कृति का वर्णन करते हुए शास्त्री जी लिखते हैं कि- "भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चांदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल से बिद्दी हुई आइने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की घो-घो, पो-पो और सर्राटे बन्द दौड़ थी। चांदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े,

पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियाँ एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।"[54]

आचार्य जी दिल्ली की तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय दिल्ली की सड़कों पर आज की तरह विभिन्न प्रकार की रेसिंग गाड़ियां तथा वाहन नहीं चलते थे, अपितु हाथी, घोड़ा, पालकी आदि साधनों के द्वारा रानियां अपने घर से विदा होती थीं ।

इसी प्रकार आचार्य जी की एक और ऐतिहासिक कहानी 'अबुलफजल वध' है। यह भी मुगल कालीन कहानी है। इस कहानी के माध्यम से आचार्य जी ने इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना का वर्णन किया है। जिस अबुलफजल ने अकबर के शाहजादे के खिलाफ कान भरे थे कि शाहजादा सलीम आवारा, खुदगर्ज, निकम्मा तथा गुनहगार है। बुंदेल खंड के राजा वीरसिंह ने उसी शेख अबुलफजल का सिर काटकर सलीम को राजा बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। एक बार जब शेख अबुलफजल और वीरसिंह का युद्ध हुआ तब "शेख ने तड़ातड़ वार करने शुरू किये। महाराज वीरसिंह देव ने और कुछ वार बचाए। अन्त में वो भी युद्ध करने लगे। दोनों ओर की सेनाएँ कुछ क्षण युद्ध देखतीं रहीं। हठात् मुगल दल अर्राकर दौड़ पड़ा। महाराज की सेना भी टूट पड़ी। एक बार महाराज ने फिर युद्ध रोकने की चेष्टा की, परन्तु इतने ही में एक गोली शेख की कनपटी को चीरती हुई निकल गई। महाराज खिन्न वदन शिविर में लौट आये।"[55]

इस प्रकार शास्त्री जी ने बुंदेल खंड के शासक वीरसिंह की वीरता, साहस और धैर्य जैसे सांस्कृतिक गुणों को व्यक्त किया है।

इसी प्रकार इनकी एक कहानी 'प्रबुद्ध' है जो कि बौद्ध कालीन है, इसमें महात्मा बुद्ध के समय के सांस्कृतिक वातावरण तथा भगवान बुद्ध के द्वारा दिये गए विचारों को दर्शाया गया है जिसे अपने जीवन में उतारकर मनुष्य इस दुनियां के मोह-माया के बन्धनों से आसानी से छूट जाता है तथा उन बातों का अनुसरण करके मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। इस कहानी के द्वारा यह भी दर्शाने का प्रयास किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति के मन मस्तिष्क में अंतर्द्वन्द्व चल रहा हो तो वह किस प्रकार से दूर किया जा सकता है। आचार्य जी इस कहानी में राजकुमार 'सिद्धार्थ' के मन में चल रही व्यथाओं को बताते हुए कहते हैं कि-"वायु-मण्डप की एक स्वच्छशिला पर राजकुमार सिद्धार्थ बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानों किसी गहन चिंता में मग्न थे। बसन्त की मृदुल वायु उनके काक-पक्ष को लहरा रही थी। कुसुम-गुच्छ, झूम-झूम कर सौरभ बिखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर-कान्ति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिंतन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित किशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था।"[56]

2- 'भिक्षुराज' -

बौद्ध भूमि पर लिखी गयी कहानियों में यह सबसे प्रसिद्ध एवं रोचक कहानी मानी जा सकती है। यह कहानी 'टेकनीक' की दृष्टि से उत्तम कहानी मानी जाती है। पृथ्वी के सम्राट, मगधपति प्रियदर्शी अशोक के पुत्र महाकुमार (महेन्द्र) और पुत्री महाकुमारी संघ मित्रा के द्वारा भिक्षु वृत्ति ग्रहणकर बौद्ध धर्म के प्रचार- प्रसार का वर्णन इस कहानी में किया गया है। किस प्रकार से राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी संघ मित्रा 12-12 बौद्ध भिक्षुओं के साथ बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ निकले थे, मार्ग में क्या-क्या मुसीबतें आयीं और किस प्रकार से उनका समाधान करके अपने गन्तव्य मार्ग तक पहुँचे, उसी का वर्णन मिलता है। रास्ते में एक बार जब राजकुमारी संघमित्रा का साहस जवाब दे गया तब वह राजकुमार महेन्द्र से कहती हैं- क्यों न हम घर वापस लौट चलें, इस पर राजकुमार संघ मित्रा को समझाते हुए कहता है कि- "आर्या! हमने जिस आर्यावर्त की दीक्षा ली है, उसे प्राण रहते पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। सोचो, हम असाधारण व्यक्ति हैं। हमारे पिता चक्रवर्ती सम्राट हैं। मैं इस महाराज्य का उत्तराधिकारी हूँ। मैं जहाँ भिक्षाटन करने जा रहा हूँ, कदाचित उसका राजा करद होकर मेरे पास भेंट लेकर आता परन्तु मैं उस प्रदेश की गली-गली में एक-एक ग्रास अन्न माँगूगा और बदले में सद्धर्म का पवित्र रत्न दूँगा। क्या यह मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी आर्या संघ मित्रा अलभ्य कीर्ति और सौभाग्य की बात नहीं? क्या तथागत प्रभु को छोड़कर और भी

किसी सद्धर्मी ने किया था ? परन्तु हमें उसकी महाप्रतिष्ठा करने का कैसा सुयोग मिला है, कदाचित भविष्य काल में सहस्त्रों वर्षों तक, हम लोगों की स्मृति, श्रद्धा और सम्मान सहित जीवित रहेगी।"[57]

इस प्रकार राजकुमार के द्वारा यह बात कही जाने पर संघमित्रा तथा और सभी बौद्ध भिक्षुओं में ऊर्जा का एक नया संचार हुआ। अपनी तकलीफों तथा मार्ग की बाधाओं को भूलकर वे अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहे। राजकुमार महेन्द्र भिक्षु वृत्ति के लिये जहाँ-जहाँ रुके थे, वे स्थान आज भी सुरक्षित हैं। "इस राजकुमार भिक्षु ने जिन-जिन गुफाओं में निवास किया था, वे सभी 'महेन्द्र गुफा' कहाती हैं। अब भी चट्टान में कटी हुई एक छोटी गुफा को 'महेन्द्र की शय्या' के नाम से पुकारते हैं। पहाड़ी के दूसरी ओर 'महेन्द्रकुण्ड' का भग्नावशेष है, जिसे देखकर कहा जा सकता है कि उस पर न जाने कितना बुद्धिबल और धन खर्च किया गया होगा।"[58]

3- 'आचार्य उपगुप्त'-

यह कहानी आचार्य जी ने लगभग 1928 ई. में लिखी थी तथा 8 महीने में पूर्ण की थी। इस कहानी में सम्राट अशोक के साहस, वीरता, करुणा, धार्मिक भावना इत्यादि को अति सजीवता के साथ दिखाने का प्रयास किया गया है। सम्राट अशोक के कलिंग युद्ध में हुए नरसंहार के बाद बदले हुए भाव-परिवर्तन का अन्तरंग चित्रण किया गया है। कहानी यह भी शिक्षा देती है कि मनुष्य कितना भी हिंसक, पापी, चोर क्यों न

हो परन्तु यदि वह अपने आपको बदलना चाहे, सुधारना चाहे तो वह सुधर सकता है। बस उस व्यक्ति को अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा करनी होगी, अपने अन्दर पश्चाताप की ज्वाला भड़कानी पड़ेगी। जिस प्रकार से सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध में हजारों नरसंहार को देखकर अपने हदय को परिवर्तित करने का संकल्प लिया था और प्रतिज्ञा की कि मैं आज के बाद शस्त्र नहीं उठाऊँगा।

4- 'बर्मा रोड' -

बर्मा रोड नामक कहानी में आचार्य जी ने द्वितीय महा युद्ध के समय बनने वाले 'बर्मा रोड' के निर्माण का वर्णन किया है। बर्मा रोड का निर्माण भी भारत के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उस समय बर्मा रोड का निर्माण करना बहुत ही मुश्किल कार्य था। अत: बर्मा रोड का निर्माण भी अत्यन्त साहस और लगन के साथ हुआ था। यह वीरता परक कहानी है जिसमें कहानीकार ने तत्कालीन संस्कृतियों को बड़ी सहजता के साथ दिखाने का कुशल प्रयास किया है।

5- 'लाल-पानी'-

यह भी एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी है जो 15वीं शताब्दी में 'कठियावाड़' के कच्छ प्रान्त के दो प्रमुख राजाओं 'भीम जी' और 'रावण सिंह' के आपसी मतभेद, घृणा, विश्वासघात का अनूठा वर्णन प्रस्तुत करती है। यह घटना सन् 1470 और 1500 के बीच घटित हुई थी जिसे लेखक ने अपनी लेखनी के द्वारा हम सबके समक्ष प्रस्तुत किया।

6- 'रूठी रानी' -

यह एक अत्यन्त रोचक एवं प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी है। इसमें जैसलमेर के रावल लुनकरण की पुत्री उमा के अप्रतिम सौन्दर्य और गुणों को दर्शाया गया है, जिसे अपने सुन्दर रूप और यौवन के रहने पर भी घमंड नहीं था। वह अपने पिता के दुश्मन मारवाड़ के राजा 'मालदेव' से शादी करती है। उमा पिता के षड्यंत्रों को भाँपकर अपने होने वाले पति तक खबर भिजवा देती है। जिसके फलस्वरूप मालदेव अपने खिलाफ साजिश देखकर पूरी तैयारी के साथ बारात लाता है और उमा से विवाह करता है। राजा मालदेव के पास कई रानियाँ पहले से ही थीं जिसके कारण वह उमा को अधिक प्यार और सम्मान न दे सका। उमा, मालदेव के इस रवैये से नाराज हो गई। रनिवास की सभी रानियाँ राजा को उमा के प्रति भड़काती थीं, जिस वजह से राजा भी उमा के पास ज्यादा वक्त नहीं गुजार पाता था। मालदेव की सभी रानियाँ उमा से जलने लगीं थीं। वे सभी चाहती थीं कि राजा मालदेव उमा से दूर रहें।

"बारात जोधपुर पहुँची, दीवान ने धूमधाम से स्वागत किया। कोसों तक सेना और दर्शकों का तांता बँध गया, उमा एक नये महल में उतारी गई। राव जी की अनेक रानियाँ थीं, नई सौत को देखने की सबको हौंस थी। उनमें स्वरूपदे झाली सबसे सुन्दरी थी। राव जी उसके महल में गये तो उसने दौड़कर गले की मोतियों की माला तोड़कर उन पर न्योछावर की।"[59]

इस तरह रानी 'उमा' अपने पति से 27 वर्ष तक दूर रही। एक दिन किसी युद्ध में राजा मालदेव की मृत्यु हो जाती है। यह सुनकर रानी उमा को बहुत ही आघात पहुँचा। राज्य के नियमानुसार सभी नारियाँ सती हो गयीं। अन्त में रानी उमा भी नियमानुसार सती हो गयी। इस तरह 27 वर्ष तक रूठी रानी उमा पति-प्रेम से विमुख रहते हुए अमर हो गयी। आचार्य जी ने तत्कालीन सती प्रथा, रनिवास में अनेक रानियों के रहने, तथा सत्य के लिये अपने प्राणों को अर्पित करने इत्यादि संस्कृति का वर्णन किया है।

7- 'जैसलमेर की राजकुमारी'-

इस कहानी में जैसलमेर के राजा महाराव रत्नसिंह की पुत्री 'राजकुमारी' की महान वीरता का वर्णन है। किस प्रकार से एक अकेली राजपूत कन्या ने जैसलमेर के किले के दुर्ग की रक्षा की थी। एक बार अलाउद्दीन ने जैसलमेर के किले पर आक्रमण कर दिया। उस समय राजा रत्नसिंह की पुत्री ने किले की रक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और अपने पिता जी को आश्वस्त करते हुए कहती है कि "पिता, दुर्ग की चिन्ता न कीजियेगा। जब तक उसका एक भी पत्थर से पत्थर मिला है, उसकी मैं रक्षा करूँगी। चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लीजिये।"[60]

जिस समय यवन राजपूत, जैसलमेर के दुर्ग पर आक्रमण करते हैं, उस समय यह वीर बाला राजकुमारी अपनी सखियों के साथ दुर्ग पर

चढ़कर यवन सैनिकों के दाँत खट्टे करने लगी। दुश्मनों के समक्ष पर्वत की तरह खड़ी होकर गर्व के साथ कहती है-"मैं स्त्री हूँ, पर अबला नहीं, मुझमें मर्दो जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलियाँ भी देखने- भर की स्त्रियाँ हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनों को समझती क्या हूँ।"[61]

'मलिक काफूर' अलाउद्दीन का एक गुलाम था। वह यवन सेना का अधिकारी था। अन्त में अलाउद्दीन और उसकी गुलाम मालिक काफूर अपनी हार देखकर राजकुमारी से सन्धि कर लेता है। इस प्रकार से एक वीर, स्वाभिमानी, राजपूत राजकुमारी के माध्यम से तत्कालीन संस्कृति को दिखाते हुए कहना चाहते हैं कि उस समय की वीर नारियाँ अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए युद्ध में भी भाग लेती थीं तथा अपने जान की बाजी लगाकर दुश्मनों से डटकर मुक़ाबला भी करती थीं। इन नारियों के लिये 'आत्मसम्मान' की रक्षा करना सबसे बड़ा धर्म था।

8- 'वीर बादल'-

यह उस समय की ऐतिहासिक कहानी है जब अलाउद्दीन भारत का सम्राट था और अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के किले को घेर रखा था। राजपूतों के सामने संकट के बादल मंडरा रहे थे। उस समय चित्तौड़ के राजा भीमसिंह थे। अलाउद्दीन जब कई दिनों तक चित्तौड़ के दुर्ग को जीत न सका तो वह कपट पूर्वक भीमसिंह से संधि- करनी चाही और संदेश भेजा कि -सुल्तान चित्तौड़ के राणा से बराबर की दोस्ती करना चाहते हैं। उनकी मंशा न चित्तौड़ छीनने की है, न महारानी को हरण करने की। अगर

महाराणा अपनी दोस्ती का सबूत दें तो सुल्तान अभी दिल्ली को लौट जाएँ। दोस्ती के सबूत में सुल्तान केवल यह चाहते हैं कि उन्हें केवल एक बार महारानी की झलक दिखा दी जाये, और कुछ नहीं।"[62]

यह संदेश सुनकर सभी राजपूत क्रोधित हो उठे परन्तु राणा भीमसिंह ने राजपूतों की रक्षा के विचार से सभी राजपूतों से परामर्श लिया। इन सभी की अनुमति के पश्चात पद्मिनी से भी परामर्श लेना चाहा तो पद्मिनी ने कहा-"यदि मेरा अपमान करके वह दैत्य टल जाये, तो मैं अपनी आबरू का बलिदान देने को तैयार हूँ, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं दर्पण में ही वह पशु मेरी छवि की झलक देख सकता है।"[63]

इस तरह से सुल्तान अपने कुछ सैनिकों के साथ पद्मिनी के महल के पास पहुँचता है जहाँ पर राणा भीमसिंह उसका स्वागत करते हैं। आज पहली बार एक यवन शासक अलाउद्दीन वहाँ पहुँच गया था, जहाँ पर अभी तक किसी यवन को पहुँचने का साहस नहीं हुआ था।

"जनाने दरवाजों पर सब घोड़ों से उतर पड़े। वे उन सीढ़ियों पर चढ़े जहाँ किसी यवन के पाँव नहीं पड़े थे। राजपूत क्रोध से एवं बांदियाँ भय से थर-थर काँपती जा रहीं थीं, सन्नाटा था, विरद गाने वाले चुप बैठे थे, डाडिने अपने मुँह पर घूँघट डाले सिमटी खड़ी थीं। नौबत खाने के नक्कारे औंधे पड़े थे।

सुल्तान ने कहा- महाराणा, आज से हम दोनों दोस्त हुए, हुए न कहिए ?"[64] इस प्रकार से सुल्तान पद्मिनी की झलक को दर्पण में देखने के

पश्चात् उसके रूप सौन्दर्य का दीवाना बन बैठा और उसे प्राप्त करने की कूटनीति पूर्वक चाल चली और धोखे से जाते वक्त भीमसिंह को बन्दी बना कर ले जाता है। तब रानी पद्मावती भी अपनी राजनीतिक कूटनीति तथा बुद्धि के बल पर महाराजा भीमसिंह को छुड़ाया तथा चित्तौड़ के किले को अलाउद्दीन से मुक्त कराया।

आचार्य जी ने इस कहानी में राजपूत कालीन वीर नारी की वीरता, अदम्य साहस, बुद्धि-बल को दिखाते हुए तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन करते हैं। इनका कहना है कि यदि एक नारी किसी कार्य को करने की ठान ले तो वह असम्भव हो ही नहीं सकता, बस आवश्यकता है तो स्वयं में आत्मविश्वास पैदा करने की।

'दुखवा में कासे कहूँ'- भाग -2 (कहानी संग्रह)

यह कहानी संग्रह आचार्य चतुर सेन शास्त्री जी की दूसरी कड़ी है। अभी तक हमने पहली कड़ी 'बाहर-भीतर' भाग-1'में संकलित ऐतिहासिक कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन किया। अब यहाँ पर हम कहानी संग्रह'दुखवा मैं कासे कहूँ' भाग-2 में वर्णित प्रमुख ऐतिहासिक कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन करेंगे। इस संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ हैं -

1- 'नूरजहाँ का कौशल' -

यह एक मुगल कालीन कहानी है जिसमें साम्राज्ञी नूरजहाँ अत्यन्त वीर, प्रतापी, कुशल शासन नेतृत्व जैसे गुणों से युक्त थी। इस कहानी के

माध्यम से आचार्य जी ने मुगल कालीन संस्कृति का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है। सम्राट जहाँगीर जैसा वीर शासक प्रेम-वासना में पड़कर अपने राजकाज का सारा कार्य अपनी प्यारी पत्नी नूरजहाँ के ऊपर छोड़ देता है, परन्तु नूरजहाँ अपने हिसाब से शासन चलाने लगी। इस कहानी में जहाँगीर और नूरजहाँ के अतिशय प्रेम का मनोहारी चित्रण हुआ है। दोनों की तुलना प्रेम में मदमस्त 'कबूतर-कबूतरी' से की गयी है, ये राज्य के तमाम कार्यों में उलझे हुए थे परंतु इनके प्रेम-प्रणय में कोई भी बाधा न थी अर्थात् राजकाज के साथ-साथ प्रेम भी सर्वोपरि था। नूरजहाँ तथा जहाँगीर के व्यक्तित्व के बारे में आचार्य जी लिखते हैं कि -

"नूरजहाँ में रूप था, दर्प था, प्रतिहिंसा थी, क्रोध था और थी स्त्री हदय की दुर्बलता तथा स्त्री-मस्तिष्क का कौशल, साहस और प्रत्युत्पन्न मति की अपूर्व प्रतिभा। और जहाँगीर में क्या था? असाधारण बड़प्पन, उदारता, प्रेम और सुकुमारता। निस्सन्देह वह बादशाह के पद के योग्य न था। बादशाह होने के लिये जो कठोरता, रुक्षता, कौशल और दूरदर्शिता होनी चाहिये, जहाँगीर में न थी। वह एक प्रेम का मतवाला रईस था।"[65]

इस तरह से यदि देखा जाये तो नूरजहाँ का व्यक्तित्व जहाँगीर के व्यक्तित्व से अधिक सुयोग्य था, किन्तु दोनों प्रेमी/शासक एक दूसरे के लिये मर मिटने को सदैव तैयार रहते थे। एक बार उन्हीं के सेनापति महावत खाँ से, नूरजहाँ के जान की भीख मांगते मुगल सम्राट जहाँगीर दिखाई देते हैं। महावत खाँ भी दरिया दिल व्यक्ति था, माफ कर दिया

और नूरजहाँ की जान बख्श दी। जिसका उल्लेख शास्त्री जी इस कहानी में करते हुए लिखते हैं कि- "नूरजहाँ ने एक बार महावत खाँ की और देखा, और सिर झुका लिया। वह धीरे-धीरे बादशाह के बाहुपाश से पृथक हुई, और फिर महावत खाँ के सामने खड़े होकर बोली- महावत, अब तुम मुझे कल्ल करो। पर एक औरत पर फतह हासिल करके तुम कुछ सुर्खरू न होंगे। खैर नूरजहाँ और कुछ न कह सकी, वह टप-टप आँसू गिराने लगी। शायद नूरजहाँ ने ज़िंदगी में पहली बार आँसू गिराए थे। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने अवरुद्ध कंठ से कहा- महावत ! जहाँपनाह !

'नूरजहाँ की जान बख्श दो। मैं तुमसे यह भीख माँगता हूँ।"[66]

2- 'कुम्भा की तलवार' -

इसी प्रकार आचार्य जी ने अपनी एक कहानी'कुम्भा की तलवार' में एक राजपूत बालिका तथा उसकी माता की वीरता और अदम्य साहस को रेखांकित किया है। यह एक ऐतिहासिक कहानी है जिसमें राजपूतों के पराक्रम और शौर्य के माध्यम से तत्कालीन संस्कृति को दर्शाया गया है।

रणथम्भोर का दुर्ग अत्यन्त अजेय होने के कारण महाराजा अकबर उसे जीत न सके थे। इस दुर्ग की रक्षा का भार राव सुर्जन हाड़ा की विधवा पत्नी कर रही थी। अकबर ने इस किले को जीतने के लिये अर्थात् अपना अधिकार करने के लिये, कई बार विशाल सैनिकों के साथ आक्रमण किया परन्तु जीत न सके। इस किले में महाराणा कुंभा की तलवार धरोहर के रूप में रखी हुई थी। अन्त में इस विधवा की वीर-पुत्री

अपने अदम्य साहस और वीरता का परिचय देते हुए वीरगति को प्राप्त हो गयी।

3- 'हल्दीघाटी में' -

यह कहानी भी ऐतिहासिक कहानी है। इस कहानी में आचार्य जी ने राणा प्रताप और उनके विद्रोही भाई शक्तिसिंह तथा राणा प्रताप के वीर सरदारों की वीरता को प्रदर्शित किया है। शक्तिसिंह दुश्मनों की सेना का सेनापति बन जाता है,जिससे राणा प्रताप शक्तिसिंह से बहुत क्रोधित हो जाते हैं। मेवाड़ के हिन्दू पति महाराणा प्रताप के शारीरिक सौंदर्य तथा युद्ध के लिये धारण किये गये हथियारों के माध्यम से शास्त्री जी ने उस समय की सांस्कृतिक वातावरण को उजागर किया है।

"अरावली की पहाड़ियों में, हल्दी घाटी की दाहिनी ओर एक ऊँची चोटी पर दो आदमी जल्दी-जल्दी अपने शरीर पर हथियार सजा रहे थे। एक आदमी बलिष्ठ शरीर, लम्बे कद, चौड़ी छाती वाला था। घनी और काली मूँछें ऊपर को चढ़ी हुई थीं और आँखें सुर्ख अंगारे की तरह दहक रही थीं। वह सिर से पैर तक फौलादी जिरह-बख्तर से सजा हुआ था। इस आदमी की उम्र कोई 40 वर्ष की होगी। इसका बदन तांबे की भाँति चमक रहा था।"[67]

महाराणा प्रताप और मुगल सैन्य के बीच घनघोर युद्ध की तैयारी चल रही थी। तीस हजार के करीब राजपूत सेना थी तथा मुगलों की यवन सेना लाखों के ऊपर थी। फिर भी राजपूत सेना को राणा प्रताप ने

उत्साहित करके यवनों से लोहा लेने के लिये तैयार कर लिया था। प्रताप के भाई शक्तिसिंह, जो राजपूत सेना को कलंकित करके मुगलों की सेना में सेनापति हो गये थे। यह बात प्रताप को सुई की भाँति हृदय में चुभती थी, कि मेरा ही भाई मेरे खिलाफ मुगलों की तरफ से युद्ध कर रहा है। प्रताप ने पूरी तैयारी के साथ मुगलों से युद्ध के लिये शंखनाद कर दिया। महाराणा प्रताप और उनके वीर सरदार सिंहों की भांति मुगल सेना पर टूट पड़े। अन्ततः राणा प्रताप दुश्मनों से घिर गये, तब इनके सरदार सलूम्बरा ने प्रताप को पीछे धकेलते हुए इन्हें युद्ध से वापस जाने के लिये कहा। प्रताप जब वापस लौटने लगे तो दो मुगल सैनिकों ने पीछा किया। तभी शक्तिसिंह की अन्तर्रात्मा जाग गयी और उन्होंने मुगल सैनिकों को मारकर अपने भाई प्रताप की रक्षा की और माफी माँगते हुए कहते हैं कि "युद्ध के समय तक मेरा मन द्वेष के मैल से परिपूर्ण था और मैं मुगलों का एक सेनापति था लेकिन जब मैंने आपको घायल और निःशस्त्र युद्ध से लौटते देखा और देखा कि दो मुगल शत्रु आपका पीछा कर रहे हैं तब मुझसे न रहा गया। माता का वह दूध, जो मैंने और आपने एक साथ पिया था, सजीव होकर उमड़ आया। मैंने सेना को त्याग कर उन मुगलों का पीछा किया और उन दोनों को मार गिराया।"[68]

इस प्रकार से आचार्य जी ने मेवाड़ की संस्कृति तथा 'प्रताप' के विद्रोही भाई की वीरता का यथोचित वर्णन प्रस्तुत कहानी में किया है।

इसी प्रकार से 'राजपूतनी की राख' नामक कहानी भी 'वीर बादल' नामक कहानी के कथानक के आधार पर ही लिखी गई है। इसमें चित्तौड़ के राणा भीमसिंह और दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन की राजनीतिक कूटनीतियों का उल्लेख किया गया है।

जिस प्रकार से आचार्य जी ने 'वीर-बादल' कहानी में पद्मावती और अलाउद्दीन के युद्ध सम्बन्धी कूटनीतियों का वर्णन किया है। वही इस कहानी में भी चित्रित किया गया है।

4- 'लौह पुरुष' -

सन् 1920-1948 तक का समय भारत में स्वतंत्रता का कठिन काल रहा है। हमारे देश में विभिन्न जातियों,धर्मो के लोग रहते हैं। आपसी मतभेदों तथा विदेशी भेदनीति ने राजनीति को कंटकाकीर्ण बना दिया था। प्रस्तुत कहानी में इस विषम परिस्थिति में जो भारत में राजनीतिक संकट व्याप्त था, उसका वर्णन अति रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। किस प्रकार से राष्ट्रपिता महात्मागाँधी, राजगोपालाचारी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री इत्यादि महापुरुषों ने देश की समस्त समस्याओं को अंग्रेजों से गुलामी की दासतां को, पूरी लगन व निष्ठा के साथ दूर करने का प्रयास किया था, उसी का चित्रण किया गया है। गाँधी जी ने देश को आजाद कराने के लिये कई आन्दोलन तथा कई समाज-सुधारक कार्य किये तथा तन, मन, धन और अपना पूरा जीवन लगा दिया।

5- 'भाट का वचन'-

यह एक हदय विदारक ऐतिहासिक कहानी है, जिसमें गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल थे। इनका शासन इतना सुव्यवस्थित और नीतिपूर्ण था कि गुजरात के इतिहास में स्वर्ण काल माना जाता था। सिद्धराज के मरणोपरान्त कुमारपाल 50 से भी अधिक की उम्र में राजा बने थे। वह राज्य के नियमों को भुलाकर जैन धर्म में इतना लीन हो गये थे कि जनता उनका विद्रोह करने लगी थी। कुमारपाल ने एक जैन हेमचन्द्र को अपना गुरु बनाया। कुमारपाल बड़े क्रोधी और अहंकारी थे। अपनी आज्ञा का पालन न होते देख उनका खून खौल उठता था। जैसा कि यहाँ दिया गया है।

"अपने बहनोई सांभरपति अर्णोराज को, अपनी बहिन से एक अपशब्द कहने के अपराध में, भरे दरबार में जीभ काट लेने का आदेश दिया था। विंवेश के राजा को कुमारपाल ने एक अनुरोध-पत्र लिखकर कुछ रेशमी दुपट्टे मँगाए। इस पर वहाँ के राजा ने कुमारपाल की कुछ दिल्लगी उड़ाई थी। इसी पर कुमारपाल ने उस पर सात सौ सामन्त और बीस हजार सेना समेत मालव-राजकुमार 'चाहन' को भेजा। उसने राजा को युद्ध में मार एक लाख रेशमी दुपट्टे और सात सौ दुपट्टे बनाने वाले कारीगरों को कुमारपाल की सेवा में ला उपस्थित किये। ऐसा ही वह काल था। उसमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत ठीक बैठती थी।"[69]

इस प्रकार वह अपनी आज्ञा का पालन न करने वाले को दण्ड देता था। 65 वर्ष की अवस्था में कुमार पाल ने 'मेदपाट' के सीसोदियों से एक लड़की को ब्याह करने के लिये अपने यहाँ से जयदेव भाट को मेदपाट भेजा था। उसका नाम था 'चंद्रकला' परन्तु उसने गुजरात आने से पहले भाट से यह वचन लिया था कि वह जैनियों की चरण वन्दना के लिये उपाश्रय में नहीं जायेगी। तभी भाट ने कहा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, यदि तुम्हें उपाश्रय में जाना पड़ा तो पहले मेरा सिर कटेगा। अंत में कुमारपाल जब चन्द्रकला को जबरन उपाश्रय में भेजने लगा तो उसने इनकार कर दिया। इस प्रकार भाट और कुमारपाल के बीच महासंग्राम हो जाता है जिसे देखकर चन्द्रकला तलवार से अपनी आत्महत्या कर लेती है और अन्त में भाट भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये उसी की जलती चिता में कूद जाता है।

इस कहानी में आचार्य जी ने गुजरात के भाटों की दृढ़ प्रतिज्ञा और उनकी वीरता जैसे सांस्कृतिक गुणों को जनमानस तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है।

6- 'लात की आग' -

यह कहानी भी गुजरात के यशस्वी सम्राट कुमारपाल तथा जाने-माने प्रभावशाली राजा अर्णोराज के बीच में घटित हुए प्रभावशाली झड़प का वर्णन करती है। इस कहानी को भी आचार्य जी ने 'भाट के वचन' से ही कथानक लेकर लिखी है। इन दोनों कहानियों में गुर्जर नरेश कुमार पाल

के सामन्तशाही शासन का वर्णन किया गया है। उस समय गुजरात में कैसा शासन था, जिसकी लाठी होती थी उसी की भैंस भी होती थी। वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश का बड़े मनोयोग के साथ वीरता पूर्वक वर्णन किया है।

7- रघुपति सिंह' -

रघुपति सिंह कहानी में भी आचार्य जी ने एक सच्चे योद्धा महाराणा प्रताप के टोली के सरदार रघुपति सिंह की ईमानदारी, साहस, धर्म, परायणता जैसे सांस्कृतिक गुणों का समावेश इस कहानी में किया है। रघुपति सिंह वह सरदार था जो अपने प्राणों की परवाह किये बगैर मुगल सेना के सामने लोहा लेने के लिये कूद पड़ता है।

8- 'वीर विजय'-

इस कहानी में आचार्य जी ने एक ऐसे वीर राजपूत मुकुन्ददास के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है जिन्होंने औरंगजेब को कई बार धूल चटाया था। औरंगजेब एक बार किसी बात पर मुकुन्ददास से क्रोधित हो गये थे जिसके कारण उन्होंने मुकुन्ददास को एक शेर से निहत्था लड़ने के लिये खुली चुनौती दे दी। मुकुन्ददास उस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर शेर के पिंजरे में चले गये। शेर मुकुन्ददास से डरकर एक कोने में छिप गया। इस प्रकार इस कहानी में एक वीर राजपूत की वीरता, धैर्य, साहस, जैसे सांस्कृतिक गुणों का वर्णन मिलता है।

9- 'मंदिर का रखवाला' -

इस कहानी में क्रूर औरंगजेब के सेनापति रणदूलह खाँ की क्रूरता और अहंकार को किस प्रकार से प्राणनाथ प्रभु ने दूर करके उनको सहृदय बनाया था, उसी घटना का वर्णन मनमोहक तरीके से किया गया है। यह कहानी तत्कालीन 'ओरछे' की संस्कृति से परिचित कराती है, जहाँ पर एक साधु ने अपने शान्त विचार और कर्तव्यनिष्ठा के बल पर रणदूलह खाँ से, मंदिर को टूटने से बचाया था। मंदिर के प्रधान सेवक प्राणनाथ प्रभु, रणदूलह खाँ को समझाते हुए कहते हैं कि -

"रणदूलह खाँ तुम यदि बादशाह के सच्चे सेवक हो तो तुम्हें कोई ऐसा काम न करना चाहिये, जिससे प्रजा के मन में शहंशाह के प्रति क्रोध या घृणा उत्पन्न हो। तुम्हारी नमक हलाली शान गाँठने और अत्याचार करने में नहीं शहंशाह के प्रति प्रजा के हृदय में प्रेम पैदा करने में है। कोई राजा बल से देर तक प्रजा पर हुकूमत नहीं कर सकता, जब तक कि वह उसका दिल न जीत ले। जाओ भविष्य में ऐसी चेष्टा करना कि शहंशाह और ईश्वर दोनों की नजर में तुम गुनहगार न बनो।"[70]

इस प्रकार से यदि एक व्यक्ति, पाप, चोरी, घृणा, अनैतिक कार्यों से दूर रहें तो उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं हो सकता है। और एक आदर्श जीवन जीकर सच्चाई के मार्ग में एक दीपक जला सकते हैं।

10- 'राजकुमार चूड़ा जी' -

यह कहानी मेवाड़ के सांस्कृतिक वातावरण तथा सामाजिक परिवेश का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत करती है। इस कहानी में मेवाड़ के राजा लाखा जी के पुत्र चूड़ाजी तथा मारवाड़ के राव रणमूल जी के बीच हुए युद्ध की अत्यन्त मार्मिक प्रस्तुति हुई है,जिसमें राजकुमार चूड़ाजी ने अपनी होने वाली पत्नी को भीष्म पितामह की भाँति ही अपने पिता को समर्पित कर दिया और अपने राज्याधिकार को भी अस्वीकार करते हुए, उस पत्नी के पुत्र को ही राजतिलक देने का भी प्रण लिया। इतना ही नहीं उन्होंने सब-कुछ अपने जीवन काल में ही उस नवीन पुत्र को, जिसकी उम्र मात्र 5 वर्ष की थी, राजगद्दी पर बैठाकर राजतिलक किया। राजकुमार चूड़ाजी ने किस प्रकार अपनी प्रस्तावित पत्नी को समर्पित किया उसका उल्लेख करते हुए आचार्य जी लिखते हैं कि-"मारवाड़ के राव रणमूल जी ने आपकी सेवा में नारियल भेजा है। वे पाटवीकुमार चूड़ा जी के साथ अपनी पुत्री की सगाई करना चाहते हैं। यह सुनकर महाराणा ने हँसकर अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा - ठीक है भई, अब इस सफेद दाढ़ी वाले के लिये थोड़े ही कोई नारियल भेजेगा ? दरबारी लोग राणा जी की बात सुनकर हँस दिये।"[71]

धरती और आसमान' भाग-3 (कहानी संग्रह)

इस कहानी संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ हैं -

1- 'पानवाली'-

यह मुगल कालीन ऐतिहासिक कहानी है। पानवाली कहानी लेखक की प्रसिद्ध कहानियों में एक है। यह मुगलकाल की उस संस्कृति को व्यक्त करती है जब लखनऊ जैसे प्रसिद्ध शहर में मदिरा, पान और अत्यधिक नशे से वहाँ की जनता का जीना दुर्भर हो गया था। जैसा कि लखनऊ के 'अमीनाबाद' पार्क का वर्णन करते हुए कहानीकार लिखते हैं कि "लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में इस समय जहाँ घंटाघर है, वहाँ अब से सौ वर्ष पूर्व एक छोटी सी टूटी हुई मस्जिद थी, जो भूतों वाली मस्जिद कहलाती थी और अब जहाँ बालाजी का मन्दिर है, वहाँ एक छोटा सा कच्चा एक मंजिला घर था। चारों तरफ न आज की सी बहार थी, न बिजली की चमक, न बढ़ियाँ सड़कें, न मोटर, न मेम साहिबाओं का इतना जम घट।"[72]

2- बुलबुल हजार दस्तान'-

बुलबुल हजार दस्तान कहानी भी मुगल काल से सम्बन्धित है। इस कहानी को आचार्य चतुरसेन जी ने उर्दू लेखकों के द्वारा लिखे गये तथ्यों को आधार बनाकर लिखी है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने मुगलवंश के अंतिम चिराग को गायब होने की अत्यन्त दु:ख-दर्द से भरी दास्तान को निरूपित किया है, जिसे पढ़कर पाठक की आँखों से अश्रु की धारा अनायास ही निकल पड़ती है।

3- 'फूल वालों की शैल' -

हिन्दू-मुस्लिम की एकता पर आधारित यह कहानी अंतिम मुगल बादशाह और उनकी आगामी संतानें किस प्रकार से दर-दर की ठोकरें खाती रहीं, उसी का वर्णन किया गया है। गदर के समय काफी दिनों तक मुगलवंश चारों ओर इधर-उधर दिल्ली जैसे प्रसिद्ध शहर के खंडहरों में अपनी प्रणय वेदना का दिग्दर्शन करते रहे।

4- 'अम्बपालिका'-

यह कहानी सन् 1928 ई. में लिखी गयी थी। इस कहानी में शास्त्री जी ने बौद्ध कालीन सामाजिक परिवेश, वहाँ की संस्कृति यथा-रीति-रिवाज, परंपराएँ, मान्यताएँ, धर्म, कलाकृतियाँ इत्यादि का वर्णन अति सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में अम्बपालिका से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम कहानी है। जिस समय आचार्य जी ने यह कहानी लिखी थी, उस समय लेखक के अनुसार इसकी कथा का आधार अत्यधिक अस्पष्ट था। फिर इसी कहानी के आधार पर अनेक प्रकार की कहानियाँ और उपन्यास लिखे गये।

लेखक ने इस कहानी में वैशाली की एक ऐसी सुन्दर, रमणीय, आकर्षक, रूपवती स्त्री 'अम्बपालिका' का वर्णन किया है , जो पूरे वैशाली नगर में सबसे खूबसूरत थी। उसका शरीर फूलों की तरह नाजुक और कोमल था। उस समय वैशाली में यह नियम था कि राज्य की जो कन्या सबसे सुन्दर होगी, उसे किसी एक पुरुष की न होकर पूरे राज्य के लिये

सुरक्षित रखा जायेगा। परिणामत: इस नियमानुसार अम्बपालिका को 'वैशाली की नगर वधू' बनना पड़ा। उसके रूप,सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शास्त्री जी लिखते हैं कि-

"विधाता ने मानों उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रंग गोरा ही न था, उस पर सुनहरी प्रभा थी- जैसी चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अंगों की सुडौलता वर्णन के बाहर की बात थी। उस सौन्दर्य मे विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौन्दर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती की पर्त उतार देने से भीतर से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है; उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रतिवर्ष निखार पाता था। उसका कद कुछ लम्बा, देह माँसल और कुच पीन थे। तिस पर उसकी कमर इतनी पतली थी कि उसे कटिबन्ध बाँधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अंग-प्रत्यंग चैतन्य थे, मानों प्रकृति ने उसे नृत्य करने और आनन्द भोग करने को बनाया था।"[73]

आचार्य जी ने अम्बपालिका कहानी के माध्यम से तत्कालीन (बौद्धकालीन) संस्कृति पर प्रकाश डाला है। उस समय वैशाली में यह परम्परा चल रही थी कि जो राज्य की सबसे सुन्दर कन्या होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न बनाकर, नगर के सभी पुरुषों के मनोरंजन के लिये 'नगर वधू' बना दिया जाता था। इसी तरह 'क्रीता' नामक कहानी

में जैन धर्म की संस्कृति तथा 'प्रतिदान' कहानी में बौद्ध धर्म की संस्कृति का सामाजिक सन्दर्भों में वर्णन किया गया है।

'सोया हुआ शहर ' भाग -4(कहानी संग्रह)

1- 'सोया हुआ शहर'-

यह कहानी मुगल कालीन संस्कृति की एक ऐतिहासिक झलक प्रस्तुत करती है। आगरा तथा फतेहपुर सीकरी के पुराने खण्डहरों में उलझी हुई मुगल-वासना और शाहजहाँ तथा मुमताज महल के नवीन प्रणय प्रेम का अनोखा वर्णन प्रस्तुत करती है। सम्राट जहाँगीर और उनकी प्राण प्रिया पत्नी नूरजहाँ के शासन सम्बन्धी नियमों तथा राज-काज के देख-भाल की झलक भी प्रस्तुत की गयी है। साम्राज्ञी नूरजहाँ ने अपने स्वार्थपूर्ण कूटनीति से जहाँगीर को प्रेम-प्रणय का लालच देकर अपने वश में कर लिया था। राज्य के पूरे शासन पर अपना नियंत्रण रखती थी। जिसे चाहती थी, उसे अपनी सेना में भर्ती करती थी और जिसे चाहती थी, सेना से बाहर कर देती थी। जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज़ के साथ मिलकर एक नाटक के द्वारा, जहाँगीर और नूरजहाँ की आँखों पर बँधी काली पट्टी को दूर किया।

“खूब किया ताज, तुम तो मलिका के रूप में जँच गई और सवाल भी किस शान से किये !

'और तुमने भी खूब शाहजादा खुर्रम का स्वांग भरा ! यूसुफ आह, उन कपडों में तुम जँचते थे, मजा आ गया ! और तुम प्यारी ताज, वाह, क्या शान थी।

मगर यह तो कहो, यह नाटक किस लिए खेला गया?"[74]

आचार्य जी ने इस कहानी के द्वारा मुगलकालीन प्रेम तथा शासन सम्बन्धी संस्कृतियों को बड़ी ही तटस्थता के साथ उद्घाटित किया है।

2- 'चौथी भांवर' -

आचार्य जी ने इस कहानी में राजपूती जीवन का चित्रण किया है। राजपूत किस प्रकार से अपने किये गये वादों को पूरा करने के लिये, इस मिट्टी के नाशवान शरीर की आहुति देने के लिए हर-क्षण तैयार खड़े रहते हैं। राजपूत बड़े ही साहसी और वीर होते हैं। उनकी रग-रग में वीरता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इस कहानी में शादी-विवाह के मध्य में हुए संघर्ष की यशोगाथा का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें गुजरात के यशस्वी सम्राट सोलंकी भीमसिंह तथा दूसरे राज्य के राजा पृथ्वीराज थे। इन दोनों राजाओं के बीच हुए संघर्ष की कहानी चौथी भांवर में अत्यन्त वीरतापूर्वक प्रस्तुत हुई है।

3- 'राज्यों की चौसर' -

मुगलकालीन कहानी 'राज्यों की चौसर' में राजपूतों की स्थिति अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गयी थी, राजपूत आपस में ही बिखर गये थे।

यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से भी ये कमजोर हो गये थे, परन्तु इतने पर भी वह लोग इतने कमजोर नहीं हुए थे कि उन्हें कोई भी युद्ध में ललकार कर चला जाये। वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर दुश्मनों के वार का सामना करते थे। राजपूत वीर, साहसी और उदार हृदय वाले थे। उन्होंने कभी भी अपने राज्य की नींव को टस से मस नहीं होने दिया। राजपूत वीर 'चौसर' के बहुत अधिक प्रेमी थे। यह लोग अपनी हार-जीत का फैसला चौसर खेल द्वारा ही निर्धारित करते थे। यह कहानी मुगल कालीन संस्कृति, खेल, राजनीति, धर्म इत्यादि पर प्रकाश डालती है।

4- 'हैदर अली' -

अंग्रेजों के समय की यह कहानी इतनी प्रबल और हृदयग्राही है कि पाठक इसे एक बार में ही पढ़ने को उतावला हो जाता है। यह अंग्रेजों की उस दास्तान को प्रस्तुत करती है जब दिल्ली का सुल्तान हैदर अली था। हैदर अली के क्रिया-कलाप, शासन सम्बन्धी कार्यों तथा उनके द्वारा बनाये गये राज्य के रीति-रिवाज और परम्पराओं की सांस्कृतिक तत्वों की अनोखी झलक इस कहानी में देखने को मिलती है। हैदर अली बहुत ही गरीब पिता का पुत्र था। वह अपनी वीरता और योग्यता के बल पर एक मामूली सैनिक से एक विशाल साम्राज्य का मालिक बन गया था। इनको 'हैदर अली शाह' भी कहा जाता था। इन्होंने धीरे-धीरे अपनी सेना का विस्तार किया। आचार्य जी हैदर अली के साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की सेना और युद्ध में होने वाले हथियारों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि-

“उसकी सेना में सवा तीन लाख सिपाही तो हमेशा कायम रहते थे। उन्नीस हजार सवार, दस हजार तोपखाने के रिसाले, सवा लाख पैदल और दो लाख फौज सवारी के अधीन थी। उसके खजाने में अस्सी करोड़ रुपये की कीमत के जर-जवाहरात थे। उसकी पशुशाला में सात सौ हाथी, छ हजार ऊँट, ग्यारह हजार घोड़े, चार लाख गाय-बैल, एक लाख भैंस, साठ हजार भेड़ें थीं। शस्त्रागार में छः लाख बन्दूकें, दो लाख तलवारें और बाईस हजार तोपें थीं।”[75]

हैदर अली पढ़ा-लिखा बिल्कुल भी नहीं था। फिर भी पूरे शासन तंत्र को अति सुव्यवस्थित तरीके से चलाता था। लाख कोशिशों के बावजूद भी उसने फारसी में सिर्फ अपने नाम का पहला अक्षर ’हे’ ही लिखना सीख पाया था। वह अपने शासन में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखता था तथा हिन्दू- मुसलमानों, दोनों को समान भावना की दृष्टि से देखता था। “वह अपने दरबार में हिन्दू-त्योहारों को धूम-धाम से मनाया करता था। दशहरे का जश्न तो वह दस दिन तक मनाता था, रोज शाम को अतिशबाजी छूटती थी, सांहों, बारहसिंगों और शेरों की लड़ाइयाँ होती थीं, कुश्तियाँ निकाली जाती थीं, दावतें होती थीं, इनाम-इकराम बाँटे जाते थे, दीन दुखियों को भोजन, वस्त्र बाँटा जाता था।”[76]

वह अपनी जनता का कुशल-क्षेम पूछने स्वयं जाता था। एक बार जब वह हवाखोरी के लिये बाहर जा रहा था तो रास्ते में एक बुढ़िया ने उनसे शिकायत करती है कि मेरी पुत्री को आगा मोहम्मद भगा ले गया

है। मैंने जब आपके जमादार 'हैदरशाह' से कहा तो उसने कुछ जवाब नहीं दिया। यह बात सुनकर हैदर अली अपने जमादार को दण्ड देने के लिए भी तैयार हो गया। कुछ लोगों ने जब हैदरशाह को माफ करने लिए कहा तो इस पर सम्राट हैदरअली ने कहा-"मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता, किसी बादशाह और उसकी प्रजा के बीच के पत्र-व्यवहार रोकने से बढ़कर, कोई गुनाह नहीं हो सकता। बलवानों का कर्त्तव्य है कि निर्बलों का इंसाफ करें जो बादशाह अपनी प्रजा पर जुल्म होने देता है, और उसे दण्ड नहीं देता उसकी प्रजा का प्रेम और विश्वास उस पर से हट जाता है, और प्रजा उससे विद्रोह करने लगती है। हैदर ने हुक्म दिया कि हैदरशाह को आम जगह में दो सौ कोड़े लगाए जायँ।"[77]

इस प्रकार से तत्कालीन दिल्ली की सांस्कृतिक कार्यो, घटनाओं तथा रीति-रिवाजों और परम्पराओं का पूर्ण- रूपेण पालन किया जाता था। राजा हैदर अली हिन्दू और मुसलमान दोनों में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता था। वह हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के त्योहारों तथा परम्पराओं का अनुसरण करता था उसके काल में 'माफ़ी नामा' नहीं था। जो गलती करता था उसे दण्ड भी अवश्य मिलता था फिर चाहे वह व्यक्ति राजा का कोई ख़ास मंत्री हो या आम जनता। न्याय सबके लिये समान था।

5- 'विश्वासघात'-

यह कहानी सन् 1946 ई. में लिखी गयी थी। इस कहानी में दिल्ली का शहंशाह आलमगीर औरंगजेब किस प्रकार से कुटिलता और क्रूरता पूर्वक दिल्ली पर शासन करता था। इन्हीं सब शासन सम्बन्धी पहलुओं का सांस्कृतिक अध्ययन किया गया हे।

'कहानी खत्म हो गई' भाग-5 (कहानी संग्रह)

1- 'कलंगा दुर्ग' -

यह कहानी सन् 1814 ई. में घटित एक घटना पर आधारित है। इस कहानी में नेपाल के 'नाहन' के राजा तथा अंग्रेजों के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया गया है। कलंगा दुर्ग का निर्माण नाहन के सैनिकों द्वारा अंग्रेजों के आक्रमण से सुरक्षा हेतु हुआ था। अंग्रेजों ने नेपाल के नाहन क्षेत्र को अपने अधीन करने के लिए युद्ध का शंखनाद कर दिया था। जिससे क्रोधित होकर नेपालियों ने जमकर लोहा लिया। उस समय प्रसिद्ध मगरूर अंग्रेज 'हैस्टिंग्स' गवर्नर जनरल था और मुख्य प्रतिनिधि भी ईस्ट इंडिया कंपनी का था। अंग्रेजों के आतंक के सामने महमूद गजनवी और मोहम्मद गोरी के आक्रमण भी फीके पड़ गये थे। अंग्रेजों को भारत के अप्रतिम सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा वातावरण के प्रति घनिष्ट लगाव था।जैसा कि प्रस्तुत कहानी में भारत की अकल्पनीय प्राकृतिक सुन्दर रमणीय स्थलों का जिक्र किया गया है। शास्त्रीजी ने अंग्रेज और नेपालियों के युद्ध के साथ-साथ वहाँ की सांस्कृतिक धरोहर से भी

अवगत कराया है- “भारत के गरम मैदानों की अपेक्षा हिमालय की घाटियों में ही ये अंग्रेजी उपनिवेश स्थापित किए जाएँ। जहाँ अंग्रेजों की अपनी नैतिक और शारीरिक शक्तियाँ ज्यों की त्यों कायम रह सकें। हिमालय की रमणीय घाटियों के प्रति उनका मोह बहुत था और वे देहरादून, कुमायूँ, गढ़वाल के इलाकों पर अपने दांत गड़ाये हुए थे।”[78]

जहाँ अंग्रेजों की सेना में 30 हजार सैनिक दल-बल के साथ युद्ध करने आये थे, वहीं पर नाहन के वीर जवान मात्र 12 हजार संख्या में युद्ध में कूद पड़े थे। नाहन के महाराज बलभद्र जी ने अपने दुर्ग में फँसे सैनिकों को प्यास से तड़पते हुए देखकर 'कलंगादुर्ग' को अपनी स्वेच्छा से छोड़कर घनघोर घाटियों में कहीं गुम हो गये। नेपाल के नाहन के राजा बलभद्र के शारीरिक सौन्दर्य तथा उनके व्यक्तित्व का वर्णन इस प्रकार है "बलभद्र का शरीर सीधा, चेहरा हँसता हुआ, मूँछे नोकदार ऊपर को चढ़ी हुई। सिपाही की नपी-तुली चाल चलता हुआ, वह अंग्रेजी सेना में धँसा चला गया। बलभद्र सिंह अंग्रेजी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ साथियों सहित नाला पानी के झरनों पर जा पहुँचा। सबने जी भरकर झरने का स्वच्छ, ठंडा और ताजा पानी पिया। फिर उसने अंग्रेजी जनरल की ओर मुँह मोड़ा। उसी तरह बंदूक उसके कंधे पर थी और हाथ में नंगी तलवार। उसने चिल्लाकर कहा- कलंगा दुर्ग अजेय है। अब मैं स्वेच्छा से उसे छोड़ता हूँ।”[79]

इस तरह से प्रस्तुत कहानी में लेखक ने कलंगा दुर्ग के माध्यम से तत्कालीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा नेपाल के राजाओं और अंग्रेजों की संस्कृति का वर्णन किया है। वह स्थान आज भी उपस्थित है परन्तु वहाँ पर इस समय सुन्दर साल वनों का घना जंगल है, जो अत्यंत भयावह और अनोखा है,वहीं पर एक छोटा सा स्मारक भी किसी के द्वारा बना हुआ मिलता है जिसमें लिखा है-"हमारे वीर शत्रु बलभद्र सिंह और उनके वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोंपहार"[80]

2- 'ग्यारहवीं मई'-

लाल किले से सम्बंधित यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी है। इस कहानी में 11 मई सन् 1857 ई. के एक अनोखी झलक दिखाई गयी है। अन्तिम मुग़ल शासक बहादुर शाह और अंग्रेजों के बीच हुए भयंकर क्रान्ति का वर्णन बड़ी ही रोचकता के साथ प्रस्तुत हुई है। अंग्रेजों ने लाल किले को अपने अधीन करने के लिए मुग़ल सैनिकों से कई बार भीषण युद्ध किया। मगर मुग़ल सैनिकों ने बड़े ही पराक्रम और वीरता के साथ अपनी अन्तिम सांस तक लड़े। इस प्रकार उन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर किले की रक्षा की। इस कहानी में दिल्ली दरबार की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, समन्वय परक संस्कृति का वर्णन हुआ है।

3- 'सिंहगढ़ विजय'-

प्रस्तुत ऐतिहासिक कहानी में छत्रपति हिन्दू महाराजाधिराज हिन्दू कुल के सूर्य 'शिवाजी' तथा उनके परम सहयोगी 'तानाजी' की वीरता के उत्सर्ग की छाप देखने को मिलती है। विंध्याचल चोटी, जो पूना से पश्चिम की ओर प्राकृतिक वातावरण प्रातः कालीन से लेकर रात्रि तक अपनी अनुपम छटा बिखेरती है, वह इस पृथ्वी पर स्वर्ग की सी अनुभूति प्रदान करती है। "पूना से पश्चिम और विंध्याचल श्रृंग के एक दुरूह शिखर पर एक अति प्राचीन, शायद बौद्धकालीन गुफा है। उसके निकट घने वृक्षों का झुरमुट है। एक अमृत के समान मीठे पानी का झरना भी है। इसी गुफा के सम्मुख कोई एक तीर के अन्तर पर एक विस्तृत मैदान है। उसे ख़ास तौर पर साफ़ और समतल बनाया गया है।"[81]

छत्रपति शिवाजी और ताना जी दोनों ने मिलकर अपने दुर्ग की रक्षा की थी। इस भयंकर युद्ध में दोनों ओर की सेनाए मारी गयीं थीं।अन्त में ताना जी अपने दुर्ग की रक्षा करते-करते प्राण त्याग देते हैं। वीर शिवाजी को बहुत ही आघात पहुँचा। उन्होंने ताना जी के सर को अपनी गोद में रखकर अत्यंत रुँधे हुए कण्ठ से कम्पित आवाज में धीरे से बोले

"सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया"[82]

अर्ध ऐतिहासिक कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने हिन्दी साहित्य जगत को अपनी रचनाओं के माध्यम से एक नई ऊँचाई प्रदान की। ये हिन्दी साहित्य के प्रमुख ऐतिहासिक लेखक माने जाते हैं। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, मुगलकालीन, बौद्धकालीन, आयुर्वेद, वैज्ञानिक उपन्यास इत्यादि सभी क्षेत्रों में लेखन कार्य करके अपनी लेखनी को एक नया आयाम दिया। उनकी प्रमुख ऐतिहासिक कहानियों का अध्ययन कर लेने के पश्चात्, अब अर्ध ऐतिहासिक कहानियों के सांस्कृतिक अध्ययन पर प्रकाश डालेंगे।

1- 'लाला रुख' -

प्रस्तुत कहानी में मुग़ल कालीन प्रेम भावना का ऐसा मनमोहक चित्रण हुआ है कि हृदय स्पंदन तार झंकृत हो जाते हैं। यह अर्ध ऐतिहासिक कहानी है। इसके कुछ पात्र ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक भी हैं। जहाँ दिल्ली के लाल किले का वर्णन ऐतिहासिक महत्व पर आधारित है, वहीं पर आलमगीर की पुत्री 'लालारुख' और बुखारे के 'शाहजादे' काल्पनिक पात्र हैं, जिनके प्रेम-प्रणय का सार गर्भित वर्णन किया गया है। दिल्ली की मुगलकालीन साज-सज्जा और मनमोहक वातावरण को अत्यंत रमणीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है। लाला रुख का ब्याह बुखारे के शाहजादे के साथ तय हुआ। शाहजादे ने कश्मीर के दौलत खाने में लाला रुख का इस्तकबाल करने की इच्छा प्रकट की, जिस

समय लाला रुख की सवारी दिल्ली से होकर कश्मीर जा रही थी, उस समय दिल्ली को किस तरह से सजाया गया था उसकी झाँकी प्रस्तुत है- "जिन सड़कों से सवारी जाने वाली थी उन पर गुलाब और केवड़े के अर्क का छिड़काव किया गया था। दुकानों की सब कतारें फूलों से सजाई गई थीं। जगह-जगह पर मौलसरी और बेले के गजरों से बंदनवार बनाए गये थे। बजाजों ने कमख्वाब और जरबफ्त के थानों को लटकाकर खुबसूरत दरवाजे तैयार किये थे, जौहरी और सुनारों ने सोने-चांदी के जेवरों और जवाहरात के कीमती जिंसों से अपनी दुकान के बाहरी हिस्से को सजाया था।"[83]

शाहजादी लाला रुख की सवारी के साथ-साथ कई वीर सैनिक और बांदियां नंगी तलवार लेकर दोनों और चल रहीं थीं। पूरे नगर के लोग शाहजादी की एक झलक देखने के लिए आतुर थे। वह लोग शाहजादी की रूप सौन्दर्य की कहानी को पहले ही सुन चुके थे, आज वही इनके सामने प्रस्तुत होने जा रही थी, तो कौतूहल का रहना तो स्वाभाविक ही था।

"लाला रुख का सौंदर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक ख्यालातों की ख्याति देश-देशान्तर तक फैल गई थी। देश-देशान्तरों के शाहजादे उसे एक बार देखने को तरसते थे। उसका रंग मोतियों के समान था। उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नए पत्ते के समान थी। उसके दाँत हीरे के-से, और आँखें कच्चे दूध के समान उज्जवल और निर्दोष थीं। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी।"[84]

उसकी सुन्दरता की दास्तान पूरे दिल्ली शहर में वायु की भाँति चारों और फैल चुकी थी। दिल्ली से दौलताबाद जाते वक्त रास्ते के दृश्य जैसे- खेत-खलिहान, नदियाँ -पर्वत, वृक्ष-लताएँ, झरने और तालाबों की जो अपूर्व छटा दिख रही थी, उसे देखकर लाला रुख का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। वह मन ही मन गन-गुनाने सी लगती, क्योंकि दिल्ली जैसी नगरी में ये सब देखने को कहाँ मिलते थे। वहाँ पर तो बड़ी-बड़ी इमारतें, कारखाने, गाड़ियाँ, भवन, बाजार आदि ही देखनें को प्राय: मिलती थी। शहर में गाँव जैसी सुगन्धित वायु कहाँ मिलती है, धुँआ ही धुँआ कारखानों से निकलकर पूरा वातावरण प्रदूषित होता रहता है। गाँव में तो फल-फूल तथा रंग-बिरंगे पक्षियों के समूह भी अधिक रहते हैं, गाँव का प्राकृतिक वातावरण भी उसे मनमोहित कर रहा था। जैसा कि शास्त्री जी ने प्रस्तुत कहानी में गाँवों की संस्कृति से अवगत कराते हुए लिखते हैं कि "सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलों और पहाडियों पर पहुँची, तो लाला रुख ने अपने नाजुक हाथों से पर्दा हटाकर एक नजर दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरियाली देखने का मौक़ा नहीं मिला था। शाही महल के झरोखों से भी वह उब गई थी। इसलिए जंगल का दृश्य देखकर उसके मन में आनंद होना स्वाभाविक था। नए-नए दृश्य उसकी आँखों के आगे आते जाते थे। रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्ष और

लताएँ, स्वच्छंदता से चौकड़ी भरते हुए हिरनों के झुण्ड, चहचहाते हुए भाँति-भाँति के पक्षी उसके मन में कौतूहल पैदा कर रहे थे।"[85]

इस तरह शाहजादी लाला रुख उन्मुक्त गगन की सैर करते हुए कश्मीर के दौलत खाने में जा रही थी। कश्मीर की हसीन वादियों में शाहजादी के मनोरंजन के लिये बुखारे के शाहजादे ने अपने एक मित्र इब्राहिम को भेजा। इब्राहिम गायन-वादन में बहुत ही निपुण था। जिसके कारण शाहजादी लाला रुख इब्राहिम को दिल दे बैठी। जब यह बात फैल गयी तो शाहजादी को डर लगने लगा कि कहीं शाहजादा उससे नाराज न हों जाएँ। इसलिए जब वह उसके पास दौलत खाने में पहुँची तो माफ़ी माँगते हुए इब्राहिम की जान बख्सने को कहा। परन्तु जब शहजादी ऊपर शाहजादे की ओर देखती है तो आवाक् रह जाती है। सामने शाहजादे खड़े थे और वही इब्राहिम भी थे।

प्रस्तुत कहानी में दिल्ली शहर का वर्णन और दिल्ली से होकर कश्मीर के दौलताबाद तक के प्राकृतिक स्थलों, सुरम्य वातावरण, उन्मुक्त जीवन को उद्घाटित किया गया है।

2- 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी' -

यह मुगलकालीन अर्ध ऐतिहासिक कहानी है। इस कहानी के पात्र तो ऐतिहासिक हैं परंतु इसकी कथावस्तु काल्पनिक है। जिसमें दिल्ली सल्तनत के बादशाह 'शाहजहाँ' और उनकी प्यारी बेगम 'सलीमा' की प्रेम-गाथा का वर्णन अत्यंत रोमांचित तरीके से किया गया है। प्रस्तुत कहानी

तत्कालीन जनाने खाने में मर्द के बांदी बनकर रहने तथा रानियों के शौक और नशे का रोमांचकारी दृश्य को उदघटित करती है। शाहजहाँ अपनी नव विवाहिता पत्नी सलीमा के साथ प्रेम और मस्ती करने के लिये कश्मीर के दौलत खाने में जाते हैं। सलीमा वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर अत्यंत सुख की अनुभूति कर रही थी। उस समय सलीमा की साज-सज्जा और पहनावा अत्यधिक सुशोभित हो रहा था। "खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई उस फिरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमख्वाब की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में जरी के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे दक-दक चमक रहे थे।"[86]

एक दिन जब शाहजहाँ शिकार के लिये बाहर गये हुए थे, तो सलीमा खुलकर मस्ती के साथ जीने के लिये अपनी बांदी से कहती है कि तू आज मुझे कुछ गाकर सुना। बांदी गाना सुनाने वाली ही थी कि तभी सलीमा ने कहा कि पहले कमरे के तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे और एक गिलास शर्बत में इस्तम्बोल मिलाकर पिला। बांदी ने उस शर्बत में इस्तम्बोल के साथ-साथ एक और चीज मिलाई। सलीमा उसे एक ही घूँट में पी गई। बांदी ने गाना शुरू कर दिया-

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी....

गाना समाप्त करने के बाद बांदी ने देखा कि सलीमा नशे में धुत होकर बेसुध पड़ी है। वह थर-थर डर के मारे काँपने लगी उसने देखा कि"सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गये हैं, और ताम्बूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहें हैं। सांस कि सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्ष-स्थल, धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की बूंदे ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।"[87]

सलीमा का यह हालत देखकर बांदी उसके घुटने के पास बैठ जाती है और अपने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछते हुए होंठ को चूम लेती है। जैसे ही वह सामने देखती है उसके होश उड़ जाते हैं। सामने शाहजहाँ खड़े हैं। वह बहुत घबरा जाती है। शाहजहाँ क्रोधित होकर पूछते हैं तुम कौन हो ? तो बांदी ने डरते हुए कहा मैं'मर्द' हूँ। यह सुनते ही उनके पैरों के नीचे की जमीन खिसक जाती है। वह तुरन्त बांदी को जेल में डलवा देते हैं और रानी सलीमा को भी एक कमरे में कैद रहने का हुक्म देते हैं। जब सलीमा को होश आया और पता चला कि महाराज ने उस पर शक के कारण उसको कैद किया है। उसने कई बार अपनी बात को शाहजहाँ को पत्र के माध्यम से बतानी चाही, पर महाराज ने मौका ही नहीं दिया। अन्त में वह नाराज होकर हीरे की एक अंगूठी चाट लेती है। शाहजहाँ सूचना पाते ही दौड़े भागे आते हैं और सच्चाई का पता चलने

पर पश्चाताप की अग्नि में जलने लगते हैं। सलीमा ने कराहते हुए शाहजहाँ को बताया कि मुझे नहीं पता था की वह बांदी मर्द है। इसलिए मेरी खता माफ हो। इतना कहने के पश्चात् उसके प्राण निकल गये।

अब शाहजहाँ उसी कमरे में रात-दिन बेचैन होकर घूमते रहते हैं। उसी कमरे के सामने नदी के उस छोर पर सलीमा की कब्र बनी है। जिस खिड़की से सलीमा महल में बैठी बादशाह के आने की बाट जोहती थी, उसी खिड़की के पास बैठकर शाहजहाँ उसकी कब्र को देखते हैं। आधी रात का समय जब आता है तो उन्हें उसी कब्र से एक अत्यंत मर्मस्पर्शी गीत ध्वनि सुनाई पड़ती है वह गीत है -

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी"[88]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में राजाओं, महाराजाओं की नशा, शंका, शराब, प्रेम के प्रति आसक्ति आदि के प्रभाव को चित्रित किया गया है।

कल्पित कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन -

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने काल्पनिक कहानियाँ भी खूब लिखीं हैं। ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक कहानियों के साथ-साथ इन्होंने अपनी कल्पना के द्वारा ऐसी काल्पनिक कहानियाँ लिखी हैं जो समाज को एक आईना दिखाती हैं। इनकी कहानियों में प्रेम, सम्मान, आदर्श, नैतिक गुणों इत्यादि के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। इन्होंने कई काल्पनिक कहानियों को लिखा है। इनकी प्रमुख काल्पनिक कहानियाँ निम्नलिखित हैं -

1- 'सोने की पत्नी' -

इस कहानी में एक ऐसे व्यक्ति के चरित्र को उभारा गया है, जो धन की अभिलाषा में अपनी पत्नी तथा पुत्र की भी जान तक लेने पर आमादा हो जाता है। क्या धन ही सर्वोच्च सुखों का आधार है ? क्या पैसा- कौड़ी से दुनिया का हर सुख खरीदा जा सकता है? क्या अपने परिवार तथा सगे-सम्बन्धियों की जिंदगी से भी बढ़कर धन का महत्व होता है? इन सभी सवालों का जवाब आपको इस कहानी के माध्यम से ज्ञात हो जाएगा।

यह कहानी अनूप शहर के पास गंगा किनारे स्थित 'राजपुरा' गाँव के रघुनाथ की दास्तान को व्यक्त करती है। रघुनाथ एक ब्राह्मण जाति का साधारण सा किसान था। वह अपनी प्यारी सी पत्नी अनूपा और एक 9 मास के पुत्र 'लल्लू' के साथ हँसी-खुशी जीवन-यापन करता था। हिन्दी में एक कहावत कही जाती है कि 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' वही हाल रघुनाथ की भी हो जाती है। उसका फुफेरा भाई दिल्ली में रहता था। एक बार वह रघुनाथ को अपने यहाँ दिल्ली बुलाता है। यह सुनकर रघुनाथ बहुत खुश होता है। इसके पहले उसने दिल्ली कभी देखी नहीं थी। सब तैयारी होने के बाद वह दिल्ली पहुँचा, जब वह दिल्ली से वापस आया तो उसकी आँखे दिल्ली के रौनक में चौंधिया चुकी थीं। उसे अपना घर नर्क के समान लगने लगा था। वह दिल्ली के चका-चौंध जिंदगी के बारे में अपनी पत्नी अनूपा से कहता है कि -"दिल्ली की नागरिकता और सम्पदा

देखकर उसकी आँखे चौंधिया गई थीं। बैंक मे उसने रुपयों और नोटों के अम्बार लगे देखे थे। इतने रुपये भी दुनियाँ में इकट्ठे हो सकते हैं, यह उसने कभी नहीं सोंचा था। उसने एक से बढ़कर एक सुन्दरियाँ देखी थीं। वे बहुत कीमती रेशमी जरदोजी के काम की साड़ियाँ पहने, हीरे-मोतियों से लदी मोटरों में घूम रहीं थीं। उसने अनूपा को सदा लोकोत्तर स्त्री रत्न समझा था, वह समझता था, कहीं संसार में अनूपा से सुंदर स्त्री भी होगी ? आज उसने देखा, दिल्ली में क्या हैसियत है। ये तो साक्षात् परियाँ थीं, जिनके हास्य चाल, भाव-भंगी और सौंदर्य ने रघुनाथ को भौचक बना दिया था।"[89]

पहले रघुनाथ को अपना गाँव स्वर्ग लगता था पर दिल्ली से लौटने के पश्चात अपना घर ही उसे नर्क के समान प्रतीत होने लगा। जो सुख सुविधाएँ वह वहाँ पर देखकर आया था,उनके आगे ये सब सुख तुच्छ थे। आचार्य जी उस समय की सांस्कृतिक वातावरण, रहन-सहन का उल्लेख इस कहानी में रघुनाथ के द्वारा व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "कच्ची और बेमरम्मत दीवारें, अँधेरी कोठरियाँ, छप्पर की रसोई, टिमटिमाते सरसों के तेल का दीया, सुनसान टेढ़ी तिरछी गाँव की-संकरी गली, राम-राम यही भी कोई जीवन है। दिल्ली में कैसे एक से बढ़कर एक महल हैं। कैसी उनमें बिजली की रोशनी है। कैसी साफ-चौड़ी सड़कें हैं। यह गाँव क्या है, नरक-कुंड है हम लोग रहते हैं ? पशु की भाँति दिन काटते हैं। उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था।"[90]

इस प्रकार रघुनाथ को अपना घर काटने को दौड़ता था। वह रात-दिन अमीर होने का सपना देखने लगा। एक दिन भगवान शंकर और पार्वती विचरण कर रहे थे। पार्वती जी ने देखा कि रघुनाथ को धनी बनने का बुखार चढ़ा हुआ है, तब पार्वती शंकर जी से जिद करती हुई कहती हैं कि रघुनाथ की पत्नी को 'सोने' की कर दीजिये। शंकर जी ने तीन बूँद रसायन की टपकाकर रघुनाथ की पत्नी को सोने का बना देते हैं। रघुनाथ यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हो जाता है। वह अपनी पत्नी को सोने की बन जाने पर, दिल्ली की देखी हुई सारी इच्छाओं को पूर्ति के रूप में देखने लगता है। उसने अपने पुत्र लल्लू और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनूपा की उँगलियो को काटकर बेचना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उसने अनूपा के दोनों हाथ और दोनों पैरों को भी काट कर बेच दिया। वह अब गाँव नहीं दिल्ली शहर में रहने लगा था। वहाँ पर रोजगार-धंधा के चक्कर में पड़कर तथा वेश्यालयों और नशे में धुत होकर पैसे के लिये पत्नी के एक-एक अंग को काट-काटकर बेचता गया। एक दिन उसका पुत्र लल्लू भी चल बसा। वह अब बहुत चिंतित हो गया, उसे अपने पुराने दिन याद आने लगे। वह खेत, वह लल्लू, वह पत्नी। अब उसके पास अपाहिज पत्नी के सिवाय कुछ भी न बचा था। उसके मित्रों ने उसे दूसरी लड़की से शादी कराने का लालच देकर अनूपा को मारकर बेचने की बात कहने लगे। पहले तो रघुनाथ ने मना किया परन्तु अंतत: राजी हो गया और फिर एक दिन - “अनूपा के भी आँसू ढरक आये। वह कुछ भी बोल

ना सकी। एकाएक उसके मुहँ से चीख निकल गई। रघुनाथ ने पीछे सिर घुमाकर देखा, पाँचों शैतान द्धार पर खड़े हैं। एक के हाथ में बड़ा सा बर्छा है, दूसरे के हाथ में कोयला और भट्ठी, तीसरे के हाथ में एक बड़ा सा गंडासा। उन्हीं को देखकर अनूपा चीख उठी थी।"[91]

मनुष्य धन की लालसा में इतना गिर जाता है कि वह अपने स्वार्थ में सब रिश्तों को भूल जाता है। उसे सिर्फ अपना हित ध्यान रहता है। आचार्य जी ने इस कहानी को लिखकर आज समाज में होने वाले इस तरह के कार्यो के प्रति रोष व्यक्त किया है, तथा उसके होने वाले भयंकर दुष्परिणामों को भी दिखाया है। आदमी किस तरह से अपनी बसी-बसायी जिंदगी को, किसी के कान भरने से अथवा स्वार्थ में पड़कर नष्ट कर लेता है। जैसे कि रघुनाथ एक दिन सपने में देखता है कि उसकी पत्नी सोने की हो गई है। और वह 'सोने' के लालच में पड़कर अपनी प्राणों से प्रिय पत्नी को अपाहिज करके उसे मरने के लिये मजबूर कर देता है। जब पाँचों साथी उसकी पत्नी को मार-मारकर काट रहे थे तभी उसकी आँख खुल जाती है, और अनूपा हँसते हुए कहती है कि"पागल हो गए हो क्या ? अभी दिल्ली का सपना ही देख रहे हो। दुपहर हो गई, न गाय दुही, न सानी दी, लल्लू भूखा है। बड़बड़ाते-बड़बड़ाते खाट पर से भी गिर गए।- अनूपा फिर हँस दी।"[92]

रघुनाथ को जब पता चला कि वह दिल्ली के चकाचौंध में खोकर एक सपना देख रहा था तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। सामने अपनी पत्नी अनूपा तथा अपने पुत्र लल्लू को पाकर वह उनसे लिपट कर रो रहा था।

2- कहानी खत्म हो गई' -

यह एक ऐसी दर्दनाक कहानी है जिसमें एक विधवा के पतन और उसके साथ हुए हादसे को व्यक्त करती है। जिसे समाज ने उस विधवा को नीचे ढकेलने की पूरी कोशिश की, परन्तु पाप और अपराध का बोझ स्वयं उसी विधवा स्त्री पर लगा।

यह एक ग्रामीण जीवन की संस्कृतियों पर आधारित कहानी है। समाज में हमें प्राय: ऐसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। इस कहानी में मेजर चौधरी, जो की जमींदार के बेटे थे और उनके नौकर की एक पुत्री जो अत्यंत ही सुंदर थी उसका वर्णन मिलता है। मेजर चौधरी जब 'ला' की पढ़ाई पूरी करके घर वापस लौटे तो प्रथम बार उस लड़की को देखकर अचम्भित हो जाते हैं और कहते हैं कि -

"अब उसके बाल बिखरे न थे। ठीक-ठाक बालों की माँग निकली थी, कपड़े सलीके के शहरी ढंग के बारीक और बढ़िया थे। स्वस्थ तारुण्य उसकी एड़ियो में झाँक रहा था। जीवन की ताजगी से वह लहलहा रही थी। जीवन में पहली ही बार किसी लड़की को मैंने ऐसी रुचि से देखा था। उसका चेहरा गुलाब के समान रंगीन और आँखें तारों के समान चमकीली थीं। वह हँसती नहीं थी, फूल बिखेरती थी, चलती न थी, धरती को

डगमग करती थी। मैं क्या कहूँ? मुझे एक ही क्षण में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दस- पाँच अंगीठियाँ मेरे अंग में धधक रही हैं और मैं तपकर लाल हो रहा हूँ।"[93]

कुछ दिनों के पश्चात उस लड़की की शादी हो जाती है और इधर मेजर चौधरी की भी शादी 'सुषमा' से हो जाती है। सुषमा भी एक साधारण, खूबसूरत और सुशील लड़की थी। एक दिन उस लड़की के पिता, चौधरी साहब से कहते हैं कि मैं बरबाद हो गया। मेरी पुत्री विधवा हो गई। कुछ दिन बाद वह विधवा, चौधरी साहब के घर आने-जाने लगी और घर के कुछ कार्यों में सुषमा का हाथ भी बटाने लगी। चौधरी साहब भी धीरे- धीरे उस विधवा स्त्री को अंदर ही अंदर चाहने लगे थे। एक दिन उन्होंने उसे देखा और उसको देखते ही रह गये।

"वह सुषमा के पास बैठी है। इस समय वह यौवन से भरपूर थी। उस समय यदि वह खिलती कली थी तो आज पूर्ण विकसित पुष्प। परिधान उसका साधारण था। पर स्तब्धता और सलीका, जो बहुधा देहात में नहीं देखा जाता, उसकी हर अदा से प्रकट होता था। उसका रंग अब जरा और निखर गया था, अंग भर गये थे और रूप कि दुपहरी उस पर चढ़ी थी। अथवां एक ही शब्द में कहूँ तो वह इस समय बसन्त की फुलवारी हो रही थी।"[94]

इस तरह मेजर चौधरी और उस विधवा स्त्री के बीच संपर्क बढ़ता गया। कुछ दिनो बाद अचानक एक दिन वह विधवा स्त्री मेजर साहब को

रास्ते में खड़ी मिली। उसने चादर से पूरा मुँह ढका हुआ था। उसने चौधरी को एकांत में बुलाकर कुछ मदद कि गुहार लगाई। उन्होंने पूछा कि तुम क्या चाहती हो? तो उसने अपनी दर्द भरी दास्तान को कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हुए कहा-"अपनी इज्जत बचाना। आप राजा- रईस हैं, मैं गरीब, अनाथ, विधवा, रांड स्त्री हूँ। जिस परिस्थिति में मैं फँस गई हूँ उसके लिए मैं अकेले आपको जिम्मेवार नहीं ठहरा सकती। दुर्बलता मेरी भी थी। फिर मैं तुच्छ स्त्री हूँ। सभी भोग मैं भोग लूँगी पर इज्जत आबरू मेरी भी है। मेरे पिता आपके एक ईमानदार सेवक थे। मैं आपके गाँव कि बेटी हूँ, मेरी बदनामी गाँव की बदनामी है। वह मैं न होने दूँगी, इसमें मेरी आप मदद कीजिए।"[95]

इस तरह उस विधवा ने चौधरी साहब से मदद माँगी और अपने जीवन यापन के लिए एक भैंस की माँग की, जिससे वह उस भैंस का घी-दूध बेचकर अपना पेट पाल सके। चौधरी साहब ने उसकी इच्छा पूरी कर दी, क्योंकि उसके पिताजी की भी मृत्यु हो चुकी थी। अब वह अकेले अपने जीवन की नईया को नहीं खींच पा रही थी, उसने चौधरी से अपनी दूसरी शादी कराने के लिये भी कहा, परन्तु चौधरी साहब हाँ कहकर चले गए।

कुछ दिनो बाद पता चलता है कि पुलिस उनके गाँव में आयी है और वह विधवा स्त्री भी साथ में है। वहीं पर एक बोरी में एक नवजात शिशु कि लाश भी भरी थी। उस विधवा को बहुत मारने पीटने के बाद भी

पुलिस को यह पता न चल सका कि वह पुत्र किसका था। चौधरी साहब तुरंत समझ गये कि वह तो हमारा ही खून है, परन्तु समाज के डर से उन्होंने कुछ नहीं कहा और पैसा-कौड़ी खर्च करके मामला रफा-दफा करा दिया।

अगले ही दिन पता चला कि वह विधवा स्त्री भी मर गई और चौधरी साहब जो भैंस उसे दिये थे, वह भी वापस उनके घर बँधी थी। इस प्रकार से यह कहानी यही पर खत्म हो जाती है, इसी कारण शायद इस कहानी का नाम भी 'कहानी खत्म हो गई' रखा गया मालूम पड़ता है।

"आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की बाल कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन"

बाल साहित्य की लेखन परम्परा अत्यन्त प्राचीन है हम देखते हैं कि नारायण पण्डित ने 'पंचतंत्र' नामक पुस्तक में, बाल कहानियों में पशु पक्षियों को माध्यम बनाकर बच्चों को शिक्षा प्रदान की, उसी प्रकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने जो बाल कहानियाँ लिखी हैं वह बच्चों के जीवन के हर मोड़ पर मनोरंजन के साथ-साथ उनके भावी भविष्य का पथ भी प्रशस्त करती हैं। कहानियाँ सुनना बच्चों की सबसे प्यारी आदत है। यदि छात्रों या बालकों को कोई भी प्रभावकारी ज्ञान देना हो तो प्रयास यह होना चाहिये कि उन्हें सचित्र कहानी के माध्यम से शिक्षा दी जाय तो ज्यादा प्रभावकारी होगा। जब हम लोग छोटे थे तो हमारे घरों में हमारी दादी, नानी हमें कहानियाँ सुनाती थीं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी बाल कहानियों में सांस्कृतिक जीवन को बेहतर तरीके से दिखलाया है। वे समाज के हर पहलू पर बराबर सांस्कृतिक कहानियाँ लिखे हैं। इनकी बाल कहानियों का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें वर्तमान जीवन की सच्चाई से परिचित कराना है। आज के बालक कल देश के भविष्य होंगे। उसी के अनुरूप उनका चरित्र निर्माण होगा। शास्त्री जी ने बाल कहानियों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा प्रदान करके उनके चरित्र को उज्ज्वल बनाने का सार्थक प्रयास किया है। जिनका अनुसरण करके हम अपने बालकों को जीवन की समस्याओं से जूझने के उपाय तथा उनके आगामी भविष्य को संवार सकते हैं। आगे इन्हीं बच्चों को बड़े होकर अंतरिक्ष तक की यात्राएं करनी है तथा वे अपने देश के प्रति अपना तन, मन, धन, सब कुछ न्योछावर कर देने में तनिक भी संकोच नहीं करेंगे।

गहन अध्ययन करने के उपरान्त हमने यह देखा कि चतुरसेन शास्त्री जी की बाल कहानियाँ नैतिक जीवन तथा नैतिक धर्मों से भी जुड़ी हुई हैं, जिससे हमें जीवन के नैतिक मूल्यों को समझने में सहायता मिलती है और हम अपने कर्तव्य, धर्म से परिचित होते हैं जो हमें कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर अग्रसर करती हैं। आचार्य जी ने निम्नलिखित बाल कहानियाँ लिखी है। जैसे -

1. बात का धनी
2. संतोषी भोला
3. मारवाड़ का शेर

4. चालाकी का बदला
5. केसरी सिंह की रिहाई
6. भाई की विदाई
7. रणबांका राठौर
8. बुलबुल की कहानी
9. हठी हमीर
10- राजा के छोटे बेटे की कहानी

श्री के. पिल्लई के द्वारा बाल साहित्य के प्रकाशन हेतु 'चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट' की स्थापना 1957 ई. में की गयी। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य बच्चों के लिये उचित डिजाइनिंग व सामग्री उपलब्ध कराना है। यह 5-16 वर्ष तक के बच्चों के लिये बेहतर बाल साहित्य उपलब्ध कराता है जैसे - पौराणिक कथाएँ ज्ञानवर्धक कथाएं, रहस्य, रोमांच, महान व्यक्तित्व, वन्य जीवन, पर्यावरण इत्यादि।

फणीश्वर नाथ रेणु जो कि एक आँचलिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने किस प्रकार से ग्रामीण अँचल की संस्कृति का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। वास्तव में 'रेणु' जी ने आँचलिक उपन्यास जैसी विधा को नयी पहचान दिलाई। प्रेमचन्द ने यदि स्वतंत्रता के पहले ग्रामीण जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और जन जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है तो रेणु जी ने भी स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय गाँवों के यथार्थ जीवन की संस्कृति का वर्णन किया है। 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से वो मेरीगंज की शैक्षणिक स्थिति का वर्णन करते हैं।

"सारे मेरी गंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं- पढ़े-लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नये पढ़ने वालों की संख्या है पन्द्रह।"[96]

ठीक इसी प्रकार आचार्य शास्त्री जी की बाल कहानियों में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों का उल्लेख मिलता है। 'बात का धनी' नामक बाल कहानी हमें जीवन की यथार्थ सच्चाइयों से रूबरू कराती है, क्योंकि बात ही वह सरल साधन है जिसके द्वारा हम अपनी अभिव्यक्ति को दूसरों तक पहुँचाते हैं, जो व्यक्ति अपनी कही बात पर खरा नहीं उतरता उसे समाज में हेय की दृष्टि से देखा जाता है तथा उसकी गणना पशुओं के समान की जाती है। यदि आपने किसी को कोई वचन दिया है तो प्राण देकर भी उसे पूरा करना आपका दायित्व बन जाता है।

यह संस्कृति हमारे देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। इतिहास साक्षी है कि राजा हरिश्चंद्र सत्य के कारण ही अपना सब कुछ गंवा देते हैं परन्तु असत्य का सहारा नहीं लिया- यह उक्ति प्रचलित है।

"राजा बिक गये रानी बिक गये बिक गये रोहित कुमार
सत्य के कारण तीनों बिकने गये काशी बाजार।"

रामायण में अयोध्या के राजा दशरथ ने प्राणों से अधिक प्रिय पुत्र श्री राम को राज सिंहासन देने के बजाय यदि उन्हें वनवास के लिये भेजा था तो सिर्फ और सिर्फ कैकेयी को दिये हुए अपने वचन के कारण।

इसी प्रसंग में 'बात का धनी' कहानी में सरदार रघुपति सिंह जो कि महाराणा प्रताप की टोली का सरदार था। जब रघुपति को यह सूचना मिली कि उसका पुत्र मरणासन्न अवस्था में पहुँच चुका है और उसकी पत्नी उसे गोद में लिये लाचार मुगल सैनिकों से घिरी हुई बैठी है तो रघुपति वहाँ तुरन्त पहुँचता है और सिपाही द्वारा तुरन्त पहचाने जाने पर उनसे वादा करता है। -

"तनिक ठहरों, मेरा बच्चा मर रहा है मैं जरा उसे देख आऊँ तब तुम मुझे गिरफ्तार कर लेना"

"और अगर तुम भाग जाओ ?

रघुपति सिंह ने तपक कर कहा - पातकी, कायर, राजपूतों पर संदेह।"[97]

इसके पश्चात रघुपति अन्दर जाकर अपने बीवी और बच्चे से मिलता है और फिर वापस आकर वादे के मुताबिक गिरफ्तार हो जाता है। वह चाहता तो भाग सकता था परन्तु वह 'बात का धनी' था।

प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द जी ने अपने कथा साहित्य में गरीब किसानों एवं उनके सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन का हू-ब-हू तस्वीर खींचा है। प्रेमचन्द का किसान सिर्फ स्वाधीनता के आन्दोलन में ही भाग नहीं लेता अपितु महाजन, जमींदार, नौकरशाही से संघर्ष तथा अपने परिवार में, बिरादरियों

में, सहयोगियों के साथ व्यवहार करता हुआ नजर आता है। किसान किस तरह से अभावों में भी अपने बच्चों तथा परिवार का पालन-पोषण करता है उसकी एक झाँकी प्रस्तुत है। "किसान अपने बच्चों को बहुत प्यार करता है। होरी और धनिया अपने बच्चों को बड़े लाड़ प्यार से पालते हैं। संयुक्त परिवार के आपसी सम्बन्धों का प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है परिवार में जो ज्यादा कमाता है, उसके बच्चों को अधिक सुविधाएं मिलती है, और जो व्यक्ति छैला बना घूमता है, उसके बच्चों की उपेक्षा होती है। 'शंखनाद' के बाकें गुमान के बच्चे को धेले की मिठाई के लिये भी तरसना पड़ता है। इसी बच्चे के प्यार के कारण गुमान भी श्रम करने लगता है। बच्चों के प्रति किसान के प्यार का यह भी एक उदाहरण है।"[98]

प्रेमचन्द जी की दो बैलों की कथा और एक कुत्ते की कहानी वे बाल कहानियाँ हैं जिनमें पशुओं को वाणी देकर उन्हें व्यक्ति पात्र के रूप में प्रस्तुत करके बाल पाठकों के हृदय में प्राणी जगत के प्रति संवेदना, सहानुभूति जगाने का प्रयास किया गया है।

इसी प्रकार आचार्य शास्त्री जी ने पशुओं के साथ-साथ पक्षियों के माध्यम से वाणी देकर उन्हें मानवीय पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। जिससे दुःख, सुख का अहसास हो और उन पर हम अत्याचार ना करें।

शास्त्री जी ने 'बुलबुल की कहानी' में एक राजा की मनोदशा को पूर्णतः ठीक करने में बुलबुल किस तरह सहयोग करती है उसका बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। राजा बुलबुल के गीतों से इतना प्रभावित

था कि उसको सुने बगैर नींद ही नहीं आती थी। दरबार में एक दूसरी सोने की बुलबुल आ जाने के कारण वह बुलबुल उदास होकर चली गयी। राजा उसके गीतों के वियोग में अत्यन्त बीमार हो गया। और फिर.....

"एक दिन शाम को बादशाह चुपचाप लेटा था कि उसके कान में बहुत मीठी आवाज सुनायी पड़ी। उसने सिर उठाकर देखा कि सामने पेड़ पर वही बुलबुल गा रही है। राजा को देखकर उसने कहा - आपके बीमार होने की खबर सुनकर मुझसे रहा न गया, चली आयी। अब जब तक आप चंगे न हो जावें - मैं रोज आपको एक गाना सुना जाया करूँगी।"[99]

हनुमान प्रसाद पोद्दार ने 'भला आदमी' नामक बाल कहानी में सामाजिक संस्कृति का एक चित्र खींचा हैं। किस तरह एक पुजारी ने साधारण से मनुष्य को कैसे पूरे मंदिर का प्रबन्धक बना दिया जिसने राह में गड़े पत्थर को पैर में न लगने पर भी फावड़े से खोदकर बाहर इसलिये कर दिया, क्योंकि वह उसे अपना कर्तव्य समझता था। जबकि लाखों लोग उसी रास्ते पर चोटें खाते हुए आते जाते थे। लेकिन किसी ने उस पत्थर को बाहर नहीं निकाला।

इसी प्रकार आचार्य जी ने 'भाई की विदाई' नामक बाल कहानी में मानवीय सम्बन्धों को उकेरा है। जहाँ एक डाकू ने चोरी करने गये अजनबी घर में सब कुछ लूटने के पश्चात उसी का एक साथी उस घर की कृष्णा नामक युवती के साथ अभद्र व्यवहार करने की कोशिश करने लगा जिस पर उस डाकू ने अपने साथी का साथ देने के बजाय उस

युवती को अपनी बहन मानकर अपने साथी पर ही तीन चार गोलियाँ दाग दी और उस बहन से बोला -

"इस पापी का अपराध इससे भी अधिक था। यह दण्ड पाकर भी अभी पाप से उन्मुक्त नहीं हुआ है- जब तक तुम क्षमा न करो? इसने हमारे दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। दुनिया भर की स्त्रियाँ हमारी बहनें हैं। यह तो हमारा व्रत है।"[100]

ये थे एक डाकू के वाक्य जिसने चोरी, डकैती के पेशे को अपना धर्म तो बनाया था, लेकिन वह जो भी चोरी करता था उसे असहाय, गरीबों, दीन-दुःखियों में बाँट देता था। उसका एक अन्न भी ग्रहण करना पाप समझता था। हम देखते हैं कि इस कहानी में किस प्रकार से मानवीय सम्बन्धों पर आधारित संस्कृति को दर्शाया गया है यदि सभी देशवासी इसे समझ लें तो इस दुनिया से चोरी, पाप, भ्रष्टाचार इत्यादि सारे अनिष्ट कार्य स्वतः समाप्त हो जायेंगे। हमें एक दूसरे को कोशने की जरूरत ही नहीं रहेगी, व्यक्ति को कभी भी अपने ईमान से विचलित नहीं होना चाहिये। हमेशा सत्य का मार्ग अपनाना चाहिये। लाख बाधाएं हो लेकिन हमें अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिये यही हमारी संस्कृति कहती है। लालच व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु होता है। कबीर ने ठीक ही कहा है -

'रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पीउ।

देखि पराई चूपरि रोटी, मत ललचावे जीउ।।'

जैसा कि हम जानते हैं कि डॉ. दिनेश्वर प्रसाद ने अपने निबन्धों में लोक साहित्य और संस्कृति पर विशेष बल दिया है। वे संस्कृति के स्वरुप का निर्धारण करते हुए कहते हैं कि- "पिछली दो शताब्दियों में उसकी कुछ नयी परिभाषाएँ विकसित हुई हैं। उनमें एक यह है कि मनुष्य संस्कृति- निर्माता प्राणी है। यह परिभाषा उसके सम्बन्ध में प्रचलित कई परिभाषाओं से अधिक संगत है, क्योंकि संस्कृति उसकी निजी उपलब्धि है, एक वैसी विशेषता जिसमें किसी दूसरी जीव जाति की साझेदारी नहीं है। इसका कारण यह है कि संस्कृति की व्याख्या न तो केवल जैविकता के आधार पर की जा सकती है और न केवल सामाजिकता के आधार पर।"[101]

हमें किसी भी परिस्थिति में धैर्य नहीं खोना चाहिये। जो कुछ भी मिल जाये बस उसी में संतोष कर लेना चाहिये। संतोष का फल बहुत मीठा होता है इसकी पुष्टि आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने अपनी 'संतोषी भोला' नामक बाल कहानी के माध्यम से करके इस जगत को एक सांस्कृतिक प्रेरणा दी है। इस कहानी में एक ऐसे व्यक्ति (भोला) को दर्शाया है जिसने अपने सम्पूर्ण परिवार को छोड़कर, घर से मोह-माया के सारे बन्धन तोड़कर, कलेजे पर अपने असहनीय पत्थर रखकर, अपनी आँखों में आँसुओं का सैलाब लेकर एक अजनबी, अनजान शहर में अपनी क्षुधा को शान्त करने तथा परिवार को दो वक्त की रोटी जुटाने के

उद्देश्य से एक सेठ के यहाँ नौकरी कर लेता है। भोला परम मेहनती, ईमानदार और संतोषी था।

वह सेठ के यहाँ तीन वर्ष कार्य करने के पश्चात् अपना पूरा पैसा सेठ से, घर जाने के लिये माँगता है परन्तु सेठ बहुत कंजूस था। उसने मात्र तीन वर्ष के तीन पैसे ही भोला को दिये और कहा- बाकी के पैसे तुम्हारे रहने, खाने-पीने में कट गये। भोला उसे मालिक का दिया हुआ प्रसाद समझकर अपने गाँव के लिये निकल पड़ता है। रास्ते में उसे एक साधु मिलते हैं और वह भोला से कुछ पैसे माँगते हैं। भोला अपने पूरे पैसे उस साधु को खुशी- खुशी दे देता है, साधु प्रसन्न हो जाता है और फिर वह भोला से तीन वर माँगने को कहते हैं-

"भोला ने कहा - बहुत अच्छा महाराज! एक तो आप मुझे
ऐसा धनुष बाण दीजिये जिसका निशाना कभी ना चूके।
दूसरा ऐसा बाजा दीजिये जिसे बजाते ही जो सुने वह
नाचने लगे। तीसरा एक डंडा दीजिये कि उससे जो माँगे वही दे।"[102]

यह सब वस्तुएँ भोला को संतोष रखने के कारण ही प्राप्त हुई जिनके प्रयोग से भोला बहुत धनी हो जाता है। अतः हमें किसी दूसरे की अमानत या धन दौलत के पीछे नहीं भागना चाहिये।

'चालाकी का बदला' शीर्षक अपनी अत्यन्त प्रिय बाल कहानी में शास्त्री जी ने एक ऐसे ब्राह्मण की कहानी बताई है, जिसके द्वारा बालकों को अपने जीवन की किसी भी समस्या से पीछे हटने के बजाय, उन्हें

आगे प्रेरित करने की सीख मिलती है। इसके माध्यम से धन के प्रति लोभ की संस्कृति को दर्शाया गया है। लोभ के कारण आज व्यक्ति एक दूसरे की नजर में इतना गिर जाता है कि वह पुनः किसी से नजर नहीं मिला सकता है। कहा जाता है कि-

'यदि मनुष्य पहाड़ की चोटी से गिर जाये तो एक बार वह उठ सकता है परन्तु किसी की नजर में गिरा हुआ व्यक्ति जीवन भर नहीं उठ पाता।'

बड़े बड़े ऋषि मुनि, सेठ साहूकार भी लोभ के दंश से बच नहीं पाये हैं। ज्यादा क्या कहें लोग तो लोभ के कारण, धन दौलत पाने हेतु, अपने माँ बाप को भी जान से मारने या उन्हें छोड़ देने तक का साहस करते हैं। कुछ जमीन के टुकड़े को पाने की लालसा में भाई- भाई का ही खून कर देता है। इसीलिये हमारे नैतिक सांस्कृतिक जीवन के मूल्यों में लालच, चोरी, असत्य, अधर्म हमारे दैनिक कृत्यों में अत्यधिक कुठारा घात करते हैं, जिससे व्यक्ति का स्तर समाज में दिनोदिन गिरता जाता है।

आचार्य शास्त्री जी की 'राजा के छोटे बेटे की कहानी' में नैतिक दायित्वों का हनन दिखाई पड़ता है जहाँ लोभ हावी होकर अपना ही खून अपने खून का प्यासा बना देती है। राज्य की लालसा के लिये जहाँ छः भाइयों ने मिलकर अपने सबसे छोटे भाई को (जिसे कि अभी उनके प्यार और दुलार की आवश्यकता थी) एक गहरे कुएं में धकेल दिया। हाय रे ! धिक्कार है ऐसे समाज पर जो भाई- भाई को, माता- पिता को बेटा,

पत्नी को पति चन्द कागज के टुकड़ों के लिये अपने रिस्तों का गला घोंट देते हैं।

आचार्य रामजन्द्र शुक्ल जी ने अपनी कहानियों तथा अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में सांस्कृतिक तत्वों का वर्णन किया हैं। वे कहते हैं कि- "समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज सुधार, व्यापार व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता आदि की ओट में होने वाले पाखंडपूर्ण पापाचार के चटकीले चित्र सामने लाने वाली कहानियाँ, जैसी 'उग्र' जी की हैं। वैसी 'उग्र' की भाषा बड़ी अनूठी, चपलता और आकर्षक वैचित्य के साथ चलती है। उस ढंग की भाषा उन्हीं के उपन्यासों और 'चाँदनी' ऐसी कहानियों में ही मिल सकती है।[103]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ऐतिहासिक क्षेत्र में अत्यधिक बाल कहानियाँ लिखे हैं, क्योंकि उनके समय में राजा- रजवाड़े बहुत होते थे। वे क्या खाते थे? क्या पहनते थे? उनके दैनिक क्रिया-कलापों, इत्यादि की संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

'केसरी सिंह की रिहाई'

इस कहानी में आचार्यजी ने एक राजा के सम्पूर्ण गति विधियों को चित्रित किया है।

"महाराणा मध्य बिन्दु की भाँति, बीच में एक शीतल पाटी पर बैठे थे। उनका कद मझोला, मूँछे एकाध पकी, रंग साँवला, आँखे बड़ी-बड़ी थीं।

दाढ़ी नहीं थी। वह बदन पर एक रेशमी बहुमूल्य चादर डाले थे। सिर पर दूध के झाग के समान सफेद पगड़ी थी, जिस पर एक लाल तुर्रा लगा था। गले में पन्नें की एक अत्यन्त मूल्यवान कण्ठा था। उनका सीना चौड़ा उठान ऊँची और शरीर बलवान थी। उनके कमर में पीले रंग की धोती थी। उनके सिर के बाल काले बड़ी - बड़ी आँखे मस्ती से भरपूर थीं।"[104]

शास्त्री जी ने 'रणबांका राठौर' नामक बाल कहानी (सं.1753) में सिरोही के भौगोलिक, सामाजिक, शारीरिक, सांस्कृतिक वातावरण का मनोहारी दृश्य उपस्थित किया है।

"सिरोही के ऊबड़- खाबड़ और उजाड़ पहाड़ों की एक कन्दरा में 21 वर्ष का एक युवक बहुत सी लकड़ियाँ जलाकर एक समूँचे हिरन को उस पर भून रहा था। उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे। कहना चाहिये धज्जियाँ उड़ गयी थी। परन्तु इन दरिद्र वस्त्रों में भी उसका तेजस्वी मुख और लम्बी भुजाएँ छिप न सकी थी। उसकी चमकीली गहरी आंखें, उभरी हुई छाती, घुँघराले काले बाल और ऊँचा मस्तक उसके असाधारण व्यक्तित्व को प्रकट कर रहे थे।"[105]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी की बाल कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनकी कहानियों में सांस्कृतिक वातावरण का परिचय सर्वत्र मिलता है। वे जीवन के हर पहलू पर राजा हो या रंक, स्त्री हो या पुरुष, पशु-पक्षी हो या कोई

अन्य जीव सबका अपनी बाल कहानियों में सजीव चित्रण करके पाठकों तथा बालकों को कुछ न कुछ सीख देते हैं, जिससे वे अपने आगामी भविष्य को संवार सके तथा अपने जीवन में सच्चाई, ईमानदारी, अहिंसा, गुरुजनों का सम्मान तथा माता-पिता की सेवा, सदाचरण, परोपकार, जीव दया वाले नैतिक गुणों को उतार सकें। जिससे इस संसार में रहने वाले किसी भी जीव या जन्तु का अहित न हो और वे सब एक महान राष्ट्र का निर्माण करने में अपना योगदान दे सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. गुलाबराय, निबन्ध विलय (भारतीय संसकृति, 1999, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 184
2. प्रभाकर विश्णु, संस्कृति क्या है (भूमिका), 2007, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 13.
3. बाजपेयी कुसुम 'भारतीय संस्कृति' प्र.स. 2011, जयपुर, इशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ1
4. डॉ. सत्येन्द्र (सं.) निबन्ध निलय 'भारतीय संस्कृति', 1999, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन 184 पृष्ठ
5. .प्रभाकर विश्णु, संस्कृति क्या है (भूमिका), 2007, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 4
6. प्रभाकर विश्णु, संस्कृति क्या है (भूमिका), 2007, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 3
7. प्रभाकर विश्णु, संस्कृति क्या है (भूमिका), 2007, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 5
8. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, प्र.सं. 1999, कानपुर साहित्य सदन, पृष्ठ 96
9. मिश्र, जय प्रकाश, हजारीप्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, प्र.सं. 1999, कानपुर साहित्य सदन, पृष्ठ 96

10. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, 1960, उ.प्र., हिन्दी ग्रन्थमाला, पृष्ठ 19
11. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, 1960, उ.प्र., हिन्दी ग्रन्थमाला, पृष्ठ 20
12. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 25
13. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 23
14. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 23
15. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 25
16. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 4
17. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 4
18. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, (प्रस्तावना), 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस
19. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, (प्रस्तावना), 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस

20. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 1

21. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 1

22. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 24

23. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 24

24. मिश्र, जय प्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 24

25. दिनकर' रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, (प्रस्तावना), तीसरा सं. 2010, इला. लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 11

26. 'प्रसाद' डॉ. दिनेश्वर, लोक साहित्य और संस्कृति, 2016, इलाहाबाद, जयभारती प्रकाशन, पृष्ठ 93

27. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 1

28. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 2

29. 'बाजपेयी' कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इंशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 2

30. डॉ. शास्त्री मंगल देव, भारतीय संस्कृति का विकास, 2000, बनारस, काशी विद्यापीठ, पृष्ठ 134
31. डॉ. शास्त्री मंगल देव, भारतीय संस्कृति का विकास, 2000, बनारस, काशी विद्यापीठ, पृष्ठ 142
32. मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, भारतीय संस्कृति के आधार, 2006, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन पृष्ठ 35
33. हरि वियोगी, हमारी परम्परा, 2011 नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंण्डल, पृष्ठ 37
34. डॉ. शंकर विवेक, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, 2018, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ-152
35. डॉ. शंकर विवेक, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, 2018, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ-153
36. डॉ. शंकर विवेक, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, 2018, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ-155
37. डॉ. शंकर विवेक, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, 2018, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ-156
38. डॉ.. सत्येन्द्र, निबन्ध-निलय, भारतीय-संस्कृति, गुलाबराय' 1999 नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन पृष्ठ-188
39. डॉ. सत्येन्द्र, निबन्ध-निलय, भारतीय-संस्कृति, 'गुलाबराय' 1999 नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन पृष्ठ-188

40. हरि वियोगी, हमारी परम्परा, 2011, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 42

41. हरि वियोगी, हमारी परम्परा, 2011, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ 42

42. वाजपेयी कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 113

43. वाजपेयी कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 116

44. वाजपेयी कुसुम, भारतीय संस्कृति, 2011, जयपुर, इशिका पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 116-17

45. मिश्र जय प्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उप. का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 91

46. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, (काल विभाजन) 2012 इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन

47. मिश्र विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, 2016, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन पृष्ठ 12

48. मिश्र जय प्रकाश, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उप. का सांस्कृतिक अध्ययन, 1999, कानपुर, साहित्य सदन, पृष्ठ 91

49. सिंह, डॉ. कन्हैया, राष्ट्रीय काव्यधारा, 1992, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ -5

50. सिंह, डॉ. कन्हैया, राष्ट्रीय काव्यधारा, 1992, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ -5

51. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियों के संबंध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 12

52. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियों के संबंध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 14

53. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अपनी कहानियों के संबंध में), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 15

54. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (बावर्चिन), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 24

55. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (अबुल फजल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 41

56. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (प्रबुद्ध), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 45

57. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (भिक्षुराज), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 71

58. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (भिक्षुराज), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 79

59. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (रूठी रानी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 134

60. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (जैसलमेर की राजकुमार), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 147

61. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (जैसलमेर की राजकुमार), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 148

62. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (वीर बादल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 154

63. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (वीर बादल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ'' पृष्ठ 154

64. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर-भीतर (वीर बादल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 155

65. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (नूरजहाँ का कौशल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 19-20

66. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (नूरजहाँ का कौशल), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 30

67. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (हल्दीघाटी में) , 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 89

68. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (हल्दीघाटी) , 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 96-97

69. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (भाट का वचन) , 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 149-50

70. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (मन्दिर का रखवाला) ,2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 253

71. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (राजकुमार चूड़ा जी) , 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 254

72. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, धरती और आसमान (पानवाली), 2008, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 9

73. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, धरती और आसमान (अम्बपालिका) , 2008, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 50

74. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, सोया हुआ शहर (सोया हुआ शहर), 2009, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 19

75. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, धरती और आसमान (हैदर अली), 2008, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 147

76. वही (हैदर अली) पृष्ठ 148

77. वही (हैदर अली) पृष्ठ 149

78. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कलंगा दुर्ग), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 115-116

79. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कलंगा दुर्ग), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 120

80. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कलंगा दुर्ग), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 120

81. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (सिंहगढ़ विजय), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज़, पृष्ठ 195

82. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (सिंहगढ़ विजय), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 211

83. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर भीतर (लाला रुख), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 17-18

84. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, बाहर भीतर (लाला रुख) 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 18

85. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन (दुःखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2013 नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 19

86. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन दुःखवा मैं कासे कहूँ (दुःखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 10

87. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन दुःखवा मैं कासे कहूँ (दुःखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 12

88. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन दुःखवा मैं कासे कहूँ (दुःखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 18

89. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (सोने की पत्नी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 190

90. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (सोने की पत्नी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 190

91. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (सोने की पत्नी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 208

92. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दुःखवा मैं कासे कहूँ (सोने की पत्नी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 209

93. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कहानी खत्म हो गई), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 12

94. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कहानी खत्म हो गई), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 16

95. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, कहानी खत्म हो गई (कहानी खत्म हो गई), 1961, दिल्ली, राजपाल एंड संज, पृष्ठ 21

96. 'शर्मा' डॉ. हरीश कुमार, फणीस्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति, 2003, दिल्ली, जास्मिन पब्लिकेशन, पृष्ठ 52

97. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (बात का धनी), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 75

98. प्रो. रामबक्ष, प्रेमचन्द्र और भारतीय किसान, 2012, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 235

99. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (बुलबुल की कहानी), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 121

100. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (भाई की विदाई), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 86

101. डॉ., दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, 2016, इलाहाबाद, जय भारती प्रकाशन, पृष्ठ 93

102. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (संतोषी भोला), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 48

103. 'शुक्ल' आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2012, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ 373

104. 'शास्त्री' आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (केसरी सिंह की रिहाई), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 62

105. शास्त्री आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियाँ (रणबांका राठौर) 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 98.